सप्तभंगी-तरंगिणी

[प्रवचन]

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी

प्रकाशक
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मन्त्री—सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ सदर

न्योछावर पांच रुपये

मुद्रक
काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित',
साहित्य प्रेस,
सहारनपुर

सप्तभंगीतरंगिणीप्रवचन

प्रवक्ता
(अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी)

वन्दित्वा सुरसन्दोहवन्द्याङ्घ्रिसरोरुहम् ।
श्रीवीरं कुतुकात्कुर्वे सप्तभङ्गीतरंगिणीम् ॥ १ ॥

सप्तभङ्गतरङ्गोंके अधिगमकी आवश्यकताका आधार—

ग्रन्थकार मङ्गलाचरण कर रहे हैं कि देवसमूहोसे वदनीय हैं चरणकमल जिनके ऐसे श्री वीर भगवानको नमस्कार करके सहज अनायास ही सप्तभङ्गी तरङ्गिनीको बनाता हू । इस ग्रन्थकी रचनाका आधार क्या है ? क्यो इस ग्रन्थरचना की आवश्यकता हुई है ? इन सब बातोको जाननेके लिए तत्त्वार्थसूत्रके एक सूत्रपर दृष्टि दीजिये—"प्रमाणनयैरधिगम" इस सूत्रकी उत्थानिकामे यह समझना चाहिए कि ससारके सब जीव दुखी हैं, जन्म-मरणकी परम्परामे सङ्कट पा रहे हैं । इन जीवोको सङ्कटोसे मुक्तिकी आवश्यकता है । इन सङ्कटोसे मुक्ति यह जीव तभी पा सकता है जब कि सङ्कटरहित, वैभवसहित, समृद्ध अपने आपके स्वरूपका परिज्ञान कर सके । ऐसे सहज आत्मस्वरूपका परिज्ञान करनेके लिए यह आवश्यक है कि इसके प्रतियोगी इस समस्त जगतके स्वरूपकी सही जानकारी की जाय । इसीका प्रयोज्य बताया गया है सम्यग्दर्शन—कि प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । उन तत्त्वोका परिज्ञान कैसे हो ? इसके लिए सूत्रकारने कहा है—'प्रमाणनयैरधिगम' तो इसकी व्याख्या सुनिये ! अधिगम तो यहाँ कर्ता कारक है और प्रमाण नय ये करणकारक हैं । समस्त तत्त्वार्थोका परिज्ञान प्रमाण और नयोसे होता है । तो सर्वप्रथम अधिगमकी बात सुनो ! अधिगमके मायने हैं समझ । अधिगम दो प्रकारसे होता है—एक स्वार्थ और दूसरा परार्थ । एक ऐसा जानना कि एक हम खुद जान गए उसे हम कहना नही चाहते अथवा कह भी नही सकते । इस तरहका अपने आपमे जो परिज्ञान हो वह तो है स्वार्थ अधिगम । स्व मायने खुदके, अर्थ मायने प्रयोजनके लिए । जो खुदके लिए जानना होता है उसे स्वार्थ अधिगम कहते हैं । दूसरा होता है परार्थ अधिगम—जो अधिगम समझ दूसरेके लिए की जा रही है, अर्थात् दूसरे लोग भी समझ जायें, ऐसे प्रयोजनके लिए जो जानना किया है और उसकी प्रवृत्ति की जाती है यानें जो अधिगम हुआ उसे कहते हैं परार्थ अधिगम ।

स्वार्थाधिगम व परार्थाधिगमका प्रकार—

स्वार्थ अधिगम और परार्थ अधिगम ये दोनो प्रमाण और नयोसे जाने जाते हैं। स्वार्थाधिगम तो ज्ञानात्मक है और परार्थाधिगम यह शब्दात्मक है। इसके द्वारा बात हम समझकर दूसरोंको समझानेके लिए चलते हैं। तो दूसरे लोग समझ जायें उसका उपाय क्या है ? कुछ शब्दोंसे ही तो कहेंगे। दूसरोंको समझानेके लिए हम प्रयत्न क्या करेंगे ? कुछ शब्द ही बोलेंगे, जिससे वे समझ जायें। तो परार्थाधिगम होता है शब्दरूप। तो स्वार्थाधिगम जो केवल ज्ञानात्मक है जिसका प्रयोजन खुदकी ही जानकारी सन्तोष आदिक विकास करना है, उसमें तो विकल्प नहीं है और कुछ बाह्यमे उसका व्यवहार नहीं होता है, वह तो खुदकी समझके लिए है। अब जो परार्थाधिगम कहा गया है कि दूसरोको प्रतिबोध देनेके लिये अधिगम करना, जानकारी करना, वह है शब्दरूप, तो यह परार्थाधिगम दो प्रकारका है—प्रमाणात्मक और नयात्मक। शब्द द्वारा जो हम दूसरोंके समझानेके लिए प्रवृत्ति करेंगे, ऐसा वह शब्दरूप अधिगम दो प्रकारका है—प्रमाणात्मक अधिगम उसे कहते हैं कि समस्तरूपसे तत्त्वार्थका जानना होता है वह है प्रमाणात्मक और जो एकदेश रूपसे तत्त्वार्थका जानना होता है वह है नयात्मक। तो प्रमाणात्मक और नयात्मक यह दो प्रकारका जो अधिगम है, भेद है, वह भेद ७ रूपोंमे प्रवृत्त होता है। कुछ भी बात हो, जहाँ कहा तो वहाँ ७ भङ्ग अपने आप आ जाते हैं। क्योंकि कहनेमे विधि और प्रतिषेधकी प्रधानता होगी। जब तक कुछ कहा ही नही है और केवल एक अपने आपके लिए ही वह समझ बनी है, जब तक उसमे विकल्प नही, उसका कोई भङ्ग नहीं। जहाँ कुछ दूसरोंको समझानेकी विधिमे जानकारी की तरङ्ग बनी है वहाँ ही भङ्ग बनती है। तो यह दो प्रकारोका भी भेद ७ प्रकारसे युक्त होता है विधि और प्रतिषेधकी प्रधानतामें। बस, यह ही प्रमाण सप्तभङ्गी है और नय सप्तभङ्गी है।

सप्तभङ्गीका विवरण—

७ भङ्गोंका वाक्यका जो समूह है उसे सप्तभङ्गी कहते हैं। वे वाक्य हैं कौन? 'स्यात् अस्ति एव घट' याने घट है, किसी अपेक्षाको चित्तमे रखकर कहा जा रहा है कि घट है। दूसरा भङ्ग है—'स्यात् नास्ति एव घट,' घटको छोडकर अन्य पदार्थों को निरखते हुए जब यह ध्यानमे आ रहा है कि बाकी सब पदार्थ ये नहीं हैं। जिस घटको स्यात् अस्ति बताया गया है वह घट अन्य पदार्थोंकी अपेक्षासे नही है, ऐसे निषेधकी प्रधानतासें भी पकड होती है। तो तब ये दो दृष्टियाँ आयीं। किसी भी पदार्थको निरखकर यह है, और यह अन्य नही है, ये दो बातें दृष्टिमे आती हैं, जानने मे भी ये दो बनी हुई हैं। भले ही हम उसका प्रयोग न करें लेकिन जानकारी बराबर

भी ढङ्गसे होती है। स्यात् अस्ति एव घट —यह अन्य पदार्थ नही है। जब इन दो क रकी जानकारियाँ हुईं तो एक जिज्ञासा होती है तो आखिर एक शब्दमे बतलाओ क असलियत क्या है ? जैसे घट स्वरूपसे है, पररूपसे नही है। जब ये दो बातें ज्ञानमे आ रही तो असली बात एक शब्दमे बताओ ? तो उस समय यह ज्ञान होता है क यो तो अवक्तव्य है वह घट। एक शब्दमे उसके समस्त अङ्गोको भङ्गोको सङ्गोको ता सके इस शब्दका काम नही है। तब तृतीय भङ्ग निष्पन्न होता है कि स्यात् अवक्तव्य। यो तीन स्वतन्त्र एकाकी भङ्ग है। पदार्थ है—पदार्थ नही है, पदार्थ अवक्तव्य है। इन तीन भङ्गोके होनेपर कुछ और विकल्पकी ओर चलता है, कुछ और धर्म विवरण करना चाहता है। तो वहाँ भाव बनता है कि घट स्यात अवक्तव्य है। और उसके साथ अस्ति नास्तिपना भी लगता है। तो जैसे अवक्तव्यके साथ स्वतन्त्र भङ्ग और लगे है इस तरह अवक्तव्यके बिना स्वतन्त्र दो भङ्ग भी लग गए। तब ७ भङ्ग इस प्रकार बनते हैं कि कथचित् घट है, कथचित् घट नही है, कथचित् घट अवक्तव्य है, कथचित् घट है और नही है, कथचित घट है और अवक्तव्य है, कथचित् घट नही है और अवक्तव्य है और ७ वाँ भङ्ग होता है कि कथचित घट है, नही है, इस रूपसे अवक्तव्य है। ऐसे इन ७ वाक्योके समुदायका नाम सप्तभङ्गी है।

सप्त वाक्योमे अधिगमकी पर्याप्तताका कारण—

७ वाक्योमे यह अधिगम कैसे बना ? इसका कारण है सुनने समझने वालेके प्रश्न। प्रश्न कर्ताके जो प्रश्न हुए उसका ज्ञान हो जाय, उसका समाधान हो जाय, यह तो एक प्रयोजन रहता ही है। तो उस प्रश्नके समाधानमे जो वाक्य कहा वह इन सप्तभङ्गोमेकी ही बात है। देखिये ! समझना है एक पदार्थको। उस पदार्थमे अविरुद्ध नाना धर्मोका ज्ञान किया जाना है। यद्यपि वे धर्म शब्दश: विरुद्ध जच रहे हैं लेकिन वे सभी धर्म एक वस्तुमे ही रह रहे हैं इस लिए वे अविरुद्ध कहलाते हैं। है और न, इन दोनोका स्वरूप तो विरुद्ध है। है का अर्थ विधि है, न का अर्थ निषेध है, तो स्वरूप यद्यपि इसके निरुद्ध है लेकिन ये सभी धर्म एक वस्तुमे रहते हैं इसलिए अविरुद्ध हैं। घट अपने स्वरूपसे है, यह भी बात घटमे देखी जाती है और घट पररूपसे नही है यह भी बात घटमे देखी जाती है। इस कारण ये दोनो धर्म परस्पर अविरुद्ध हो गए। तो ऐसे अविरुद्ध विधि प्रतिषेधरूप नाना धर्म एक पदार्थमे रहते है। उस पदार्थके विशेषण हैं, ऐसे ज्ञानको उत्पन्न करने वाले जो ७ वाक्योका समुदाय है वही सप्तभङ्गी कहलाता है।

सप्तभङ्गोके निर्माणमे प्राश्निकके प्रश्नका आधारत्व—

यहाँ पर विचार करें तो बहुत सी बातोंका स्पष्टीकरण होता है। प्रश्नकर्ताने कोई प्रश्न किया तो उसके बाद उसके उत्तररूप ज्ञान होगा ना ! तो उस ज्ञानको उत्पन्न किसने किया ? प्रश्नकर्ताके प्रश्नने। तो प्रश्नकर्ताका जो प्रश्नज्ञान है उस प्रश्न के ज्ञानका कारण हुआ प्रश्न। तो प्रश्न है जनक और प्रश्नज्ञान है जन्य। किसी शङ्काकारने कोई शङ्काकी और विद्वानने उसका समाधान किया। तो समाधानका जनक कौन हुआ ? प्रश्नकर्ताका प्रश्न। और समाधान जन्य है। किसी शङ्काकारका प्रश्न ही तो समाधान मिलनेका कारण बनेगा। शङ्काका उत्तर दिया जा रहा है। तो उत्तर तो है जन्य और शङ्का है जनक। शङ्काके उत्तरको शङ्काने पैदा कराया। शङ्का की गई, उसका मिला उत्तर। तो प्रश्न हुआ जनक और उसका जो उत्तर है वह है जन्य। तो यह समझना चाहिए कि जो ७ भङ्ग उत्पन्न हुए हैं उन ७ भङ्गोंको प्रश्नकर्ताके प्रश्नने उत्पन्न किया है, प्रश्न भी ७ प्रकारसे सम्भव हुआ करता है, अतएव समाधान भी ७ प्रकारके आये हैं। प्रश्नकर्ताने किया प्रश्न और उस प्रश्नमे क्या पूछा गया उसके ज्ञानसे ही तो समाधान देने वालेको कहनेकी इच्छा हुई, और कहनेकी इच्छा होनेपर वक्ताने फिर वाक्योका प्रयोग किया। कोई प्रश्नकर्ता प्रश्नकर्ता है तो सुनने वाला यही तो कहता है कि मैं इसका समाधान करदूं। जहाँ प्रश्नकर्ताके प्रश्न का समाधान करनेकी इच्छा जगी तो फिर वक्ता बोलने लगता है। तो यहाँ अब यह समझिये कि समाधानकर्ताने जो वाक्य प्रयोग किया उसका जनक तो है वक्ताकी विवक्षा। किसीने प्रश्न सुन लिया और उसका जवाब देनेकी मनमे इच्छा न जगाये तो वह कुछ बोलेगा तो नही। वक्ता कुछ बोलेगा तो उसका कारण है विवक्षा, बोलने की इच्छा। अब बोलनेकी इच्छा समाधानकर्तामे कैसे जगी ? उसका जनक है प्रश्नकर्ताका प्रश्न। प्रश्नकर्ताने प्रश्न किया तो अब इस विद्वानने यह इच्छा की कि मैं इसे जवाब दू। इसके बाद वह जवाब देने लगता है। तो इस पद्धतिमें प्रश्न करने वालेके प्रश्नज्ञानकी तो प्रयोज्यता हुई, वह आधार बना, अर्थात् जो ७ प्रकारके वाक्य बोले गए हैं उसका कारण बना प्रश्नकर्ताके प्रश्नका ज्ञान। और, फिर उस समाधान करने की इच्छा होनेसे जो यह विद्वान अब समाधार देने लगा तो ७ वाक्योका निर्माण हुआ यो सप्तभङ्गीके निर्माणमें प्रश्नकर्ताके प्रश्नका होना आधार है। और उस प्रयोगमे अब ये ७ प्रकारके भङ्ग हुए जिनको कि ऊपर बताया गया है।

प्रकृतग्रन्थोक्त सप्तभङ्गीके लक्षणकी अन्य आचार्यप्रणीत लक्षणसे पुष्टि—

सप्तभङ्गीका लक्षण आचार्योंने इस प्रकार कहा है कि प्रश्नके वशसे एक वस्तुमें अविरोधसे विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करना सो सप्तभङ्गी है। इस लक्षण मे जो 'प्रश्नके वशसे' इतना शब्द दिया है इस शब्दसे प्रयोज्यता प्रकट होती है अर्थात् सप्तभङ्गीमे ७ ही भङ्ग क्यो हुए ? उसका कारण और प्रयोजन प्रकट होता है कि

प्रश्नकर्ताके प्रश्न ७ प्रकारोमे ही सम्भव हैं। इस बातको आगे कहेगे कि क्या ७ प्रकारके ही प्रश्न उठते हैं ? कम उठकर ही रह जायें ? या इससे अधिक उठें, ऐसा क्यो नही होता ? इस समय तो इतना जानना है कि जो पदार्थोकी जानकारीमे ७ प्रकारकी पद्धतियाँ बनती हैं उनका आधार है प्रश्नकर्ताके प्रश्न। यद्यपि किसी समय प्रश्नकर्ता नही भी है, प्रश्न भी नही हो रहे, फिर भी वस्तुके सम्बन्धमे जानकारी करनेमे ७ भङ्ग बन जाते हैं। वहाँ भी यह अर्थ लेना कि चू कि प्रश्न ७ प्रकारके ही हो सकते हैं तो कोई जानकारी भी ७ प्रकारकी ही कर सकेगा। आचार्योंने जो सप्त भङ्गीका लक्षण कहा है उसमे बताया है विधि और और प्रतिषेधकी कल्पना करना। तो विधि और प्रतिषेधकी कल्पनाका भाव यह है कि हाँ अथवा ना बतानेके प्रकारमे ज्ञानका उत्पन्न करना। और, यह विधि प्रतिषेध कल्पना भी अविरुद्ध रूपसे है। विधि और प्रतिषेधका ऐसा खास वैशिष्ठ्य याने विशेषता इस शब्दसे जोड दिया है कि देखो ! एक ही पदार्थमे विधि और प्रतिषेध दोनो बराबर सम्भव हैं। और, ऐसा विदित भी होता है। यह विधि प्रतिषेधकी कल्पना जो कि प्रश्नकर्ताके प्रश्नके आधार से हुई है और अविरुद्धभावसे हुई है वह सब एक वस्तुमे होनी चाहिए। यो तो विधि प्रतिषेध नाना स्थलोमे नाना पदार्थोंके होता है, उसमे कही सप्तभङ्गी न बन जायगी। किन्तु एक ही पदार्थमे अविरुद्ध भावसे विधि और प्रतिषेधका परिचय होना सो सप्तभङ्गीमे बनेगा। यो ७ वाक्योमे जिसका समुदायपना पर्याप्त होता है अर्थात् जिस परिज्ञानकी सम्पन्नता ७ प्रकारके वाक्योमे निष्पन्न होती है ऐसा यह कल्पनाके आधारभूत पदार्थके बारेमे ज्ञान होता है।

सप्तभङ्गीके लक्षणमे कहे गये अविरुद्ध शब्दकी सार्थकताका विवरण—

अब सप्तभङ्गीके लक्षणमें जो विशेषण दिये गये हैं इन सबकी सार्थकता बताते हैं। सप्तभङ्गीका लक्षण प्रारम्भमे यह किया गया है—"एकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धविधि-प्रतिषेधात्मकधर्मप्रकारकबोधजनकसप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायत्वम्' इस उक्त लक्षणमे जो अविरुद्ध शब्द दिया है उसका प्रयोजन यह है कि प्रत्यक्ष अनुमान आदिकसे विरुद्ध विधि और प्रतिषेध वाले वाक्योंमे यह लक्षण न चला जाय सो इसकी अतिव्याप्ति रोकनेके लिए अविरुद्ध शब्द दिया है। जो प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध बैठता है, ऐसा विधि प्रतिषेध एक वस्तुमे नही लगाया जा सकता। जैसे अविरुद्ध विधि और प्रतिषेधकी कल्पना अथवा जानकारी की गई है वह अविरुद्ध है। उसमे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे विरोध नही आता। ये ऐसे भङ्ग एक पदार्थमे लादे जायें कि जो परस्परमें विरुद्ध हों तो वह तो पदार्थका स्वरूप न कहलायेगा। तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे विरुद्ध विधि प्रतिषेध वाले वाक्योमे यह लक्षण नही जाता। जिस विधि और प्रतिषेधकी जानकारी करायी जाय वह प्रमाणसे विरुद्ध न होना चाहिए। जैसे कोई अग्निको ही कहने लगे

कि इसमे ठढापन है और ठढापन ही नहीं अथवा गर्मी है, तो ऐसी विरुद्ध बातें पदार्थों मे नही बतायी जा सकती। अपेक्षासे सभी धर्म सम्भव हैं। उन धर्मोंको बताया जाता है। वे धर्म परस्पर विरुद्ध हैं स्वरूपसे लेकिन एक वस्तुमे रहते हैं। जैसे जीवके सम्बध मे कहा गया कि जीव नित्य है और जीवके ही सम्बन्धमे बताया गया कि अनित्य है तो नित्यका स्वरूप और अनित्यका स्वरूप एक दूसरेसे बिल्कुल उल्टा है। इसलिए स्वरूप दृष्टिसे नित्य और अनित्यपनमे विरोध है। जो नित्यपना है सो अनित्यपना नही है लेकिन जीवमे द्रव्यदृष्टिसे नित्यपना है और पर्यायदृष्टिसे अनित्यपना है अत. इन दोनोका जीव पदार्थमे विरोध नही आता। तो जो स्वरूपसे विरुद्ध है ऐसे विरुद्ध अनेक धर्म एक वस्तुमे अविरुद्ध रूपसे रहते हैं, उनकी जानकारी सप्तभङ्गीमे बतायी जाती है।

सप्तभङ्गीके लक्षणमे एकवस्तुविशेष्यक शब्दकी सार्थकता—

❁ अब इस सप्तभङ्गीके लक्षणमे जो यह शब्द दिया गया है कि एक वस्तुविशेष्यक अर्थात् विधि और प्रतिषेधकी निगरानी एक वस्तुके सम्बन्धमे ही की जाती है। इस शब्दके देनेसे बहुत सी विडम्बनाए समाप्त कर दी गई। घट है, घट नहीं है, यों भिन्न भिन्न स्थलोमे भिन्न भिन्न वातावरणोंमे दोनोका प्रयोग भी होता है। जहाँ घड़ा है को बताना है घडा है किसी महलमे। तभी किसी अन्य ग्राममे कपडेकी खोज हो रही थी, न मिली तो बता दिया कि कपड़ा नही है। अब एक जगहका घट है और दूसरी जगहका पट नही है, इन दोके मेलसे सप्तभङ्गी न बनेगी। यह बात एक विशेष्यक शब्दसे जाहिर होती है। अनेक वाक्योंके समुदायमे सप्तभङ्गी नहीं बनता, किन्तु एक ही पदार्थके सम्बन्धमे अविरुद्ध विधि प्रतिषेधकी जानकारीसे सप्तभङ्गी बनता है।

सप्तभगीके लक्षणमे सप्त शब्दकी सार्थकता—

❁ अब सप्तभङ्गीमे जो सप्त शब्द दिया है उससे यह जाहिर होता कि कही दो ही वाक्योमे स्याद्वादकी समाप्ति न हो जायगी। जैसे कहा कि कथंचित् घट है कथञ्चित् घट नहीं है तो यों मात्र दो वाक्योंमे स्याद्वादकी सम्पन्नता नही बतायी जा सकती। तो केवल दो वाक्योंमे सप्तभङ्गी बन जाय इसके निवारणके लिए सप्त शब्द दिया है, कोई पुरुष केवल लौकिकरूपमे एक ही वाक्य बोले—जैसे किसीको घटकी जरूरत थी और वह कहता है कि घट लावो तो केवल एक उदासीन वाक्यको लेकर कोई इसमे ही सप्तभङ्गीकी समाप्ति करे तो यह बात नहीं बनती, इस कारण बताया गया है कि ७ वाक्योंकी सगति हो तो सप्तभङ्गी बनता है। इस प्रकरणमे एक विशेष बात यह

समझना चाहिए कि लक्षणमे जो यह शब्द दिया गया है कि 'प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोजकत्वे-सति' इतना अश यद्यपि अतिव्याप्ति अव्याप्ति इस दोषके निवारण करनेमे समर्थ नही है, तथापि यह विशेषण दिया गया है यह बतानेके लिए कि सप्तभङ्गीका जो उत्थान हुआ है उसका आधार प्रश्नकर्ताका प्रश्न है। यह विशेषण देना आवश्यक हुआ है। इनका तात्पर्य यह है कि इतना कह देने मात्रसे कि प्रश्नकर्ताके प्रश्नज्ञानकी प्रयोज्यता पर सप्तभङ्गी होता है सो कही इतनेमात्रसे अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष नही दूर होते। दोषोका निवारण तो विचार विमर्शके बाद किया जायगा। प्रश्नकर्ता कुछ भी प्रश्न करे और उत्तर देने वाला कुछ भी उत्तर दे, वह उत्तर सही है अथवा नही उनमे किसी प्रकारका दोष नही आता, वे सब बातें तो प्रमाणके आधारपर हैं। प्रश्नकर्ताने प्रश्न किया और उसका उत्तर दिया, इतनेमात्रसे निर्दोषता न समझ लेना चाहिए। निर्दोषता तो प्रमाणसे साबित होगी। यहाँ तो केवल यह बतानेके लिए कि जिन्हें समझाया जाना है ऐसे शिष्योंके प्रश्न ७ प्रकारके ही सम्भव हो सकते हैं। इस कारण भङ्ग ७ ही होते हैं। इस नियमकी सूचना देनेके लिए यह विशेषण दिया गया है।

अधिगममे सप्तभङ्गकी सभवता—

ॐ

सप्तभङ्गीके लक्षणके सम्बन्धमे सक्षेपमे उक्त कथन करनेके बाद अब यह जिज्ञासा होती है कि प्रश्नकर्ताके प्रश्न ७ प्रकारसे ही क्यो सम्भव हैं ? समाधान यह है कि प्रश्नकर्ताको जाननेकी इच्छा ७ प्रकारमे ही बनती है। जैसे प्रश्नकर्ता यह जानना चाहता था कि जीव क्या नित्य है ? जीव क्या अनित्य है ? तो जैसे इन दो मोटी जिज्ञासाओके बलपर इनका भङ्ग बन जाता है ऐसे ही प्रश्नकर्ता कुछ विवेकी है, बुद्धिमान है, तो उसके ही प्रश्नोंका विस्तार कितने प्रकारोंमे हो सकता है ? तो वह अधिकसे अधिक ७ प्रकारोमे ही सम्भव है। तो चूं कि जिज्ञासा ७ प्रकारकी ही होती है अतएव प्रश्नकर्ताके प्रश्न ७ प्रकारके ही सम्भव हैं। प्रश्नकर्तामें किसी पदार्थ के जाननेकी जो इच्छा हुई है उस इच्छाको व्यक्त करने वाले वाक्य जो हो उनका भी नाम प्रश्न है। जैसे किसीने प्रश्न किया कि गो, इस शब्दका वाच्य क्या है ? गो शब्दका मतलब क्या है ? तो जैसे उत्तर दिया गया कि देखो जिसमें सास्ना लगी हो, पूछ लगी हो, जिसका कंधा विशाल हो, खुर और सींग हो आदिक अवयव करके जो विशिष्ट प्राणी हो उसका नाम गो है। तो जब प्रश्नकर्ताने यह पूछा कि गाय क्या होती है ? गायको न जानने वाले पुरुषको वहाँ गायके जाननेकी इच्छा हुई। जैसे कही उपदेशमे या लोकव्यवहारमे गायकी कुछ विशेषतायें गाई गई, उनको सुनकर गायको न जानने वाले पुरुष पूछ बैठते हैं कि गाय क्या चीज है ? बस उसका उत्तर उसके प्रश्नके अनुसार उत्तर देने वाला देता है। तो यो ही पदार्थके सम्बन्धमे प्रश्न-कर्ताके जो प्रश्न हो सकते हैं वे ७ प्रकारके ही हो सकते हैं। इस कारण उत्तर भी ७

कि इसमे ठढापन है और ठढापन है नही अथवा गर्मी है, तो ऐसी विरुद्ध बातें पदार्थों मे नही बतायी जा सकती। अपेक्षासे सभी धर्म सम्भव हैं। उन धर्मोंको बताया जाता है। वे धर्म परस्पर विरुद्ध हैं स्वरूपसे लेकिन एक वस्तुमे रहते हैं। जैसे जीवके सम्बध में कहा गया कि जीव नित्य है और जीवके ही सम्बन्धमे बताया गया कि अनित्य है तो नित्यका स्वरूप और अनित्यका स्वरूप एक दूसरेसे बिल्कुल उल्टा है। इसलिए स्वरूप दृष्टिसे नित्य और अनित्यपनेमे विरोध है। जो नित्यपना है सो अनित्यपना नही है लेकिन जीवमें द्रव्यदृष्टिसे नित्यपना है और पर्यायदृष्टिसे अनित्यपना है अत इन दोनोका जीव पदार्थमे विरोध नही आता। तो जो स्वरूपसे विरुद्ध है ऐसे विरुद्ध अनेक धर्म एक वस्तुमे अविरुद्ध रूपसे रहते हैं, उनकी जानकारी सप्तभङ्गीमे बतायी जाती है।

सप्तभङ्गीके लक्षणमे एकवस्तुविशेष्यक शब्दकी सार्थकता—

अब इस सप्तभङ्गीके लक्षणमें जो यह शब्द दिया गया है कि एक वस्तुविशेष्यक अर्थात् विधि और प्रतिषेधकी निगरानी एक वस्तुके सम्बन्धमे ही की जाती है। इस शब्दके देनेसे बहुत सी विडम्बनाए समाप्त कर दी गई। घट है, घट नही है, यो भिन्न भिन्न स्थलोमे भिन्न भिन्न वातावरणोमे दोनोका प्रयोग भी होता है। जहाँ घडा है को बताना है घडा है किसी महलमे। तभी किसी अन्य ग्राममे कपडेकी खोज हो रही थी, न मिलो तो बता दिया कि कपड़ा नही है। अब एक जगहका घट है और दूसरी जगहका पट नही है, इन दोके मेलसे सप्तभङ्गी न बनेगी। यह बात एक विषेष्यक शब्दसे जाहिर होती है। अनेक वाक्योंके समुदायमे सप्तभङ्गी नही बनता, किन्तु एक ही पदार्थके सम्बन्धमें अविरुद्ध विधि प्रतिषेधकी जानकारीसे सप्तभङ्गी बनता है।

सप्तभगीके लक्षणमे सप्त शब्दकी सार्थकता—

अब सप्तभङ्गीमे जो सप्त शब्द दिया है उससे यह जाहिर होता कि कही दो ही वाक्योमें स्याद्वादकी समाप्ति न हो जायगी। जैसे कहा कि कथचित घट है कथचित घट नही है तो यों मात्र दो वाक्योमे स्याद्वादकी सम्पन्नता नही बतायी जा सकती। तो केवल दो वाक्योमे सप्तभङ्गी बन जाय इसके निवारणके लिए सप्त शब्द दिया है, कोई पुरुष केवल लौकिकरूपमे एक ही वाक्य बोले—जैसे किसीको घटकी जरूरत थी और वह कहता है कि घट लावो तो केवल एक उदासीन वाक्यको लेकर कोई इसमें ही सप्तभङ्गीकी समाप्ति करे तो यह बात नही बनती, इस कारण बताया गया है कि ७ वाक्योकी सगति हो तो सप्तभङ्गी बनता है। इस प्रकरणमे एक विशेष बात यह

समझना चाहिए कि लक्षणमे जो यह शब्द दिया गया है कि 'प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोजकत्वे-सति' इतना अश यद्यपि अतिव्याप्ति अव्याप्ति इस दोषके निवारण करनेमे समर्थ नही है, तथापि यह विशेषण दिया गया है यह बतानेके लिए कि सप्तभङ्गीका जो उत्थान हुआ है उसका आधार प्रश्नकर्ताका प्रश्न है। यह विशेषण देना आवश्यक हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि इतना कह देने मात्रसे कि प्रश्नकर्ताके प्रश्नज्ञानकी प्रयोज्यता पर सप्तभङ्गी होता है सो कही इतनेमात्रसे अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष नही दूर होते। दोषोका निवारण तो विचार विमर्शके बाद किया जायगा। प्रश्नकर्ता कुछ भी प्रश्न करे और उत्तर देने वाला कुछ भी उत्तर दे, वह उत्तर सही है अथवा नही उनमे किसी प्रकारका दोष नही आता, वे सब बातें तो प्रमाणके आधारपर हैं। प्रश्नकर्ताने प्रश्न किया और उसका उत्तर दिया, इतनेमात्रसे निर्दोषता न समझ लेना चाहिए। निर्दोषता तो प्रमाणसे साबित होगी। यहाँ तो केवल यह बतानेके लिए कि जिन्हें समझाया जाना है ऐसे शिष्योंके प्रश्न ७ प्रकारके ही सम्भव हो सकते हैं। इस कारण भङ्ग ७ ही होते हैं। इस नियमकी सूचना देनेके लिए यह विशेषण दिया गया है।

अधिगममे सप्तभङ्गकी सभवता—

❀

सप्तभङ्गीके लक्षणके सम्बन्धमे सक्षेपमे उक्त कथन करनेके बाद अब यह जिज्ञासा होती है कि प्रश्नकर्ताके प्रश्न ७ प्रकारसे ही क्यो सम्भव हैं ? समाधान यह है कि प्रश्नकर्ताको जाननेकी इच्छा ७ प्रकारमे ही बनती है। जैसे प्रश्नकर्ता यह जानना चाहता था कि जीव क्या नित्य है ? जीव क्या अनित्य है ? तो जैसे इन दो मोटी जिज्ञासाओंके बलपर इनका भङ्ग बन जाता है ऐसे ही प्रश्नकर्ता कुछ विवेकी है, बुद्धिमान है, तो उसके ही प्रश्नोका विस्तार कितने प्रकारोंमे हो सकता है ? तो यह अधिकसे अधिक ७ प्रकारोंमे ही सम्भव है। तो चूंकि जिज्ञासा ७ प्रकारकी ही होती है अतएव प्रश्नकर्ताके प्रश्न ७ प्रकारके ही सम्भव हैं। प्रश्नकर्तामे किसी पदार्थ के जाननेकी जो इच्छा हुई है उस इच्छाको व्यक्त करने वाले वाक्य जो हों उनका भी नाम प्रश्न है। जैसे किसीने प्रश्न किया कि गौ, इस शब्दका वाच्य क्या है ? गौ शब्दका मतलब क्या है ? तो जैसे उत्तर दिया गया कि देखो जिसमे सास्ना लगी हो, पूछ लगी हो, जिसका कधा विशाल हो, खुर और सींग हो आदिक अवयव करके जो विशिष्ट प्राणी हो उसका नाम गौ है। तो जब प्रश्नकर्ताने यह पूछा कि गाय क्या होती है ? गायको न जानने वाले पुरुषको वहाँ गायके जाननेकी इच्छा हुई। जैसे कहीं उपदेशमे या लोकव्यवहारमे गायकी कुछ विशेषतायें गाई गई, उनको सुनकर गायको न जानने वाले पुरुष पूछ बैठते हैं कि गाय क्या चीज है ? बस उसका उत्तर उसके प्रश्नके अनुसार उत्तर देने वाला देता है। तो यो ही पदार्थके सम्बन्धमे प्रश्न-कर्ताके जो प्रश्न हो सकते हैं वे ७ प्रकारके ही हो सकते हैं। इस कारण उत्तर भी ७

प्रकारसे दिया गया और उनसे जो ७ वाक्य बने उनके समुदायका नाम सप्तभगी है।

सप्तभगीके विधानमे प्रश्न, जिज्ञासा प्रश्नज्ञान व समाधानका सम्बन्ध—

❀

पुरुष उत्तर देने वाला होता है वह कैसे समझे कि इस पुरुषको जाननेकी इच्छा क्या है ? वह तो उसके प्रश्नसे ही जान जायगा। इस कारण प्रश्नकर्ताका प्रश्न ही प्रश्नकर्ताकी जिज्ञासाका प्रतिपादक है। प्रश्न करने वालेने जो कुछ भी पूछा उस वाक्यसे यह ध्वनित हुआ कि इस प्रश्नकर्ताको अमुक तत्त्वके जाननेकी इच्छा है। तब प्रश्नकर्ताका प्रश्न तो हुआ जनक और उत्तर देने वालेका ज्ञान हुआ जन्य। देखो, उत्तर देने वाला अभी बडी शान्ति समतासे बैठा हुआ था, उसे कुछ मतलब नहीं था, खलबली नही थी, पर प्रश्नकर्ताने कोई प्रश्न कर दिया तो उस प्रश्नको सुनकर उत्तरदाताकी वृत्तिमे परिवर्तन हुआ। इतना तो वह तुरन्त समझ गया कि अमुक प्रश्नकर्ता अमुक पदार्थको जानना चाहता है। अब भले ही उसके राग न हो इतना बतानेका, न बताये, मगर जो सुना है उसमे प्रश्नकर्ताके प्रश्नका ज्ञान तो हो ही गया, उत्तर अगर देगा तो उसीके अनुसार देगा। तब प्रश्नकर्ताका प्रश्न हुआ समाधानका जनक और समाधान हुआ जन्य। यो सप्तभगीके लक्षणमे जो मुख्य बात यह कही गई है कि एक वस्तुके सम्बन्धमें अविरुद्ध विधि और प्रतिषेधको सिद्ध करने वाले ज्ञान को जो पैदा करें ऐसे ७ वाक्योंके समुदायका नाम सप्तभगी है सो यह लक्षण निर्दोष सिद्ध होता है।

प्रश्नकर्ताकी सप्तविध जिज्ञासाका कारण—

❀

अब शङ्काकार कहता है कि सप्तभगीके लक्षणके विवरणमे जो यह कहा गया कि ७ भग होनेका कारण है प्रश्नकर्ताके ७ प्रकारके प्रश्न और प्रश्नकर्तामे ७ प्रकारके प्रश्न हुए हैं उसका कारण है ७ प्रकारकी जिज्ञासा अर्थात् प्रश्नकर्ताको जानने का इच्छा ७ प्रकारके ज्ञानकी हुई। सो ठीक है, लेकिन प्रश्न यहाँ यह होता है कि प्रश्नकर्ताके मनमें जिज्ञासा ७ प्रकारसे ही क्यो हुई ? इसके समाधानमे कहते हैं कि प्रश्नकर्ताको अथवा किसी भी समझदारको किसी एकधर्मा वस्तुके परिचय करनेके सम्बन्धमे सशय ७ प्रकारसे ही उत्पन्न हो सकता है। अब यहाँ कोई पूछे कि सशय भी ७ प्रकारसे ही क्यो होता है ? तो उसका उत्तर है कि सशयोंके विषयभूत धर्म भी ७ प्रकारके होते हैं। ये धर्म वे ही हैं—कथचित् सत्त्व, दूसरा कथचित् असत्त्व, तीसरा क्रमसे योजित उभय अर्थात् सत्य व असत्य, चौथा अवक्तव्यपना, ५ वाँ-कथचित् सत्त्व सहित अवक्तव्य, छठा कथचित् असत्त्व सहित अवक्तव्यपना और ७ वाँ है क्रमसे योजित उभयसे विशिष्ट अवक्तव्यपना। यो धर्म ७ प्रकारके होते हैं अत सशय ७ प्रकारसे ही

सम्भव है। और जितने प्रकारसे सशय सम्भव हैं उतनी जिज्ञासा होती है। जैसे किसीको सशय हुआ कि यह सीप है या चांदी है ? तो इस सशयमे दो कोटि हैं। इस सशय करने वाले पुरुषके चित्तमे दोनो जिज्ञासायें बन रही हैं—सीप हो तो सीपकी बात समझमे आ जाय, चांदी हो तो चांद की बात समझमे आ जाय। तो जितनी कोटिके सशय होते हैं उतनी कोटिकी जिज्ञासा बनती है। धर्म हैं ७ तो ७ प्रकारसे ही सशय बने। और, तब ७ प्रकारसे ही जिज्ञासा हुई। इन जिज्ञासाओंके समाधानमे जो ७ वाक्य कहे गए उनके समुदायका नाम सप्तभगी है। इस तरह धर्म जो ७ बताये गए उनके विषयसे उत्पन्न होने वाले सशय ७ ही हैं।

प्रथम भगकी निष्पत्तिका आधारभूत प्रथम सशय—

❀

उन ७ सशयोका विवरण करते हैं—जिन सशयोपर जिज्ञासा आधारित है और जिन जिज्ञासाओपर सप्तभगका विधान आधारित है उनमे प्रथम सशय है कि घट कथचित् है ही अथवा नही, याने या सर्वथा है। यहाँ सशयमे दो कोटियाँ बताई गयी हैं। किसी भी प्रकारके संशयमे कोटियाँ कमसे कम दो होती ही हैं। यहाँ दो कोटिका सशय उत्पन्न हुआ है कि घट कथचित् है ही अथवा घट कथचित् नहीं ही है, याने क्या सर्वथा है ? इसके समाधानमे पहिला भग बना कि घट कथचित् है। तो घट कथचित् है इस भंगकी निष्पत्तिका कारण बना सशयज्ञान और वह सशयज्ञान इस रूपमे हुआ कि घट कथचित् है अथवा सर्वथा है। क्या बात है ? उसके समाधान में प्रथम भग बना कि घट कथचित् है।

प्रथम सशयके सम्बन्धमे एक विचारधारा और उसपर शङ्का—

❀

कोई सत कहते हैं कि यह प्रथम सशय घटविषयक अस्तित्त्व तथा घटविषयक नास्तित्त्वको विषय करने वाला है। तब यहाँ सशय यह हुआ कि घट कथचित् है अथवा घट कथचित् नही है। उसके समाधानमे यह प्रथम भङ्ग बना। इस प्रथम संशयकी निष्पत्ति सुनकर इस सशय निष्पत्तिपर शङ्काकार कहता है कि कथचित् सत्त्वके अभावका ही नाम कथचित् असत्त्व है। तब यहाँ दो कोटियाँ तो नही हुई। इस कारण सशयका विषय यहाँ सम्भव नही है। इस सशयमे दो कोटियाँ बताई जा रही हैं—कथंचित् सत्त्व और कथचित् असत्त्व। क्या है इनमेसे ? यो सशयका रूप बनाया गया है। लेकिन सशयका रूप यो बन नही सकता। कारण यह है कि यहाँ तो दोनो ही धर्म रहे आते हैं। कथचित् सत्त्व है और कथचित् असत्त्व है। कथचित् सत्त्वके साथ कथचित् असत्त्वका कोई विरोध नही है। सशयज्ञान जो बनता है, वह एक पदार्थमें विरुद्ध नाना धर्मोका ज्ञान करनेमे बनता है। पर, एक धर्मीमे नाना धर्म

का ज्ञानमात्र होनेसे संशय नहीं बनता। जितने धर्म एक वस्तुमें एक साथ रह सकते हैं उनमें संशयकी क्या बात ? जो दो बातें एक धर्मीमें विरुद्ध हैं उनका ज्ञान अथवा उनकी जिज्ञासा हो रही हो तो वहाँ संशय बनता है। घटमें यह घट कथंचित् है, कथंचित् नहीं है, घट आदिक अनेक पदार्थोंके स्वरूपसे नहीं है, यों अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही एक पदार्थमें जब सम्भव हैं तब उसमें संशयकी क्या बात ? यदि एक ही पदार्थमें एक ही वाक्यमें, प्रयोग और व्यवहारमें आने वाले वचनमें शब्द अनेक होने से संशयज्ञान मान लिया जाय तो जब कोई यह कहे कि यह घट द्रव्य है तो लो, इस वाक्यमें 'यह' शब्द कहकर उसमें घटपना और द्रव्यपना इन नाना धर्मोंका ज्ञान बताया गया है। तो नाना धर्मोंका ज्ञान करना मात्र यदि संशय बन जाय तो इस ज्ञानको भी कि यह घट द्रव्य है संशय बन जाना चाहिए। लेकिन ऐसा माना तो नहीं गया। तब फिर एक घटके सम्बन्धमें यह कथंचित् घट है अथवा कथंचित् घट नहीं है, इस ज्ञानको संशयज्ञान कैसे कहा जा सकता है ? इसका और खुलासा यों समझिये कि जैसे कोई बर्तन धूपमें रखा है, कबसे रखा है, किसने रखा है, यह तो कुछ जानकारी नहीं है, मगर धूपमें रखा है। अब उसे उठानेका प्रयोजन है, उस समयमें यह संशय होता है कि यह बर्तन गर्म है, या ठंडा ? तो गर्म और ठंडा होना ये दोनों परस्पर विरोधी धर्म हैं। इसलिए यहाँ संशय बन सकता है। मगर जो विरोधी धर्म नहीं हैं उन धर्मोंका बयान करें कि यह घट पीला है, मजबूत है, इस कथनमें संशय की क्या बात है ? पीला होना, मजबूत होना दोनों ही धर्म एकमें सम्भव हैं। तो ऐसे ही कथंचित् अस्तित्व और कथंचित् नास्तित्व ये दोनों ही बातें जब एक वस्तुमें सम्भव हैं तब उनके वर्णनके समयमें संशयकी बात क्या हुई ? तो जब कथंचित् है अथवा कथंचित् घट नहीं है, यह संशय बन न सकेगा, तो प्रथम भंगकी ही उत्पत्ति न हो सकेगी, क्योंकि भंगोंकी निष्पत्तिका कारण संशयज्ञान बताया गया।

प्रथम संशयकी एक विचारधारापर हुई एक शङ्काका समाधान—

❀

शङ्काकारकी उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि जो यहाँ प्रथम संशय दिखाया गया है वहाँ संशय यह बनता है कथंचित् अस्तित्व है या सर्वथा अस्तित्व है ? जहाँ प्रथम भङ्ग बताया गया कि घट कथंचित् है, यह समाधान इस संशयके होनेपर ही तो दिया गया कि कोई संशय करे कि घट कथंचित् है या सर्वथा है ? उसका उत्तर है यह प्रथम भङ्ग। तो अब देख लीजिये कि इस एक घट पदार्थमें कथंचित् अस्तित्व और सर्वथा अस्तित्व इन दो विरोधी धर्मोंके प्रकारकी जिज्ञासा बन रही है, और ये दोनों धर्म परस्पर विरुद्ध हैं। कथंचित् अस्तित्व होना और सर्वथा अस्तित्व होना ये दो परस्पर विरुद्ध हैं। यहाँ संक्षेपमें ये दो कोटियाँ नहीं ली जा रही हैं कि घट कथंचित् अस्ति है या कथंचित् नास्ति है ? किन्तु संशय यह बन रहा है, कि घट

कथचित् है या घट सर्वथा है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर उत्तर बन गया कि घट कथचित् है। घट कथचित् है याने अपने स्वरूपसे है। घट सर्वथा है, ऐसा नही है अर्थात् घट अपने स्वरूपसे है और पट आदिक समस्त पदार्थोंके स्वरूपसे सब प्रकारसे है, यह बात यहाँ नही है। तो बराबर यही सशय जिज्ञासा और प्रश्न हुआ। उसके उत्तरमें यह प्रथम भङ्ग निष्पन्न होता है कि घट कथचित् है।

प्रथम भङ्गके आधारभूत सशयज्ञानकी उत्पत्ति होनेकी असम्भवताकी चर्चा व उसका समाधान—

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये। सशयकी कोटियाँ उन पदार्थोंकी उन धर्मोंमे बनती हैं जो किसी तरह प्रसिद्ध तो हो। जैसे कुछ अधेरे उजेलेके समयमे प्रात कोई नागरिक घूमने गया किसी नई गलीमे तो दूरमें एक ऊचे लम्बे ठूठको देखकर उसे यह सशय होगया कि यह ठूठ है या पुरुष खड़ा है ? तो भाई ! ठूठ भी प्रसिद्ध है पुरुष भी प्रसिद्ध है। जब दोनो बातें कही प्रसिद्ध हैं तो उसका तो सशय बन गया, पर जो चीज कही प्रसिद्ध नही है उसका सशय कैसे बन सकता है ? प्रथम भङ्गके आधारभूत सशयज्ञानमे यदि यह बात कही जाय कि यहाँ सशयकी कोटियाँ यो बनाई जाँय कि घटका कथचित् सत्त्व है या सर्वथा सत्त्व है ? तो यहाँ कथचित् सत्त्व तो प्रसिद्ध है और सर्वथा अस्तित्त्व कही भी प्रसिद्ध नही। फिर यहाँ सशयकी कोटि कैसे बन गई ? इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि यह शका करना यो युक्त नही है कि कभी अप्रसिद्ध भी हो कुछ, लेकिन उसकी प्रसिद्ध रूपमे समझ बन रही हो तो वहाँ सशयका विषयपना सम्भव है। यद्यपि सर्वथा अस्तित्व होना सर्वथा नास्तित्व होना वास्तविक नहीं है, क्योंकि वह सिद्धान्त ही नही है लेकिन जानकारीमे या विवादके प्रसङ्गमे यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि वस्तु कथचित् ही अस्ति है या सर्वथा अस्ति है ? तो अप्रसिद्ध भी जब प्रसिद्ध रूपमे ज्ञात हो रहे हो तो दोनो ही प्रसिद्ध हो गए। यो कथचित् अस्तित्व और सर्वथा अस्तित्व दोनो प्रसिद्ध होनेपर यहाँ सशय बन जाता है। यहाँ दो कोटियोको पुन: समझिये। घटपनेसहित सत्त्व यह तो हुआ एक कोटिका ज्ञान और सब प्रकारसे सहित सत्त्व यह हुई दूसरी कोटिकी समझ। तो यहाँ वस्तुके सत्त्वमे सब प्रकारका सहित सत्त्व नही है याने घट अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नही है, यह बात तो मानी ही जा रही है। इसमे जो प्रथम भङ्ग बना कि घट कथचित अस्ति है। तो वहाँ यह सशय हुआ या घटपनेसे सहित सत्तासे युक्त है या सब पदार्थोंकी सत्तासे युक्त है ? ऐसा सशय होनेपर प्रथम भङ्गकी उत्पत्ति हुई। तो यहाँ संक्षेपमे निष्कर्ष यह समझिये कि घटपने करके सहित कथचित सत्त्वको समझना एक कोटि है और सब प्रकार सहित सत्त्वको समझना दूसरी कोटि है। चीज चल रही है सत्ताके सम्बन्धमे। घट है, है यह यहाँ मूल बात कही गई, उसमें यह घटरूपसे है

या सर्वरूपसे है ? यह संशय बना । उस संशयके निवारण करनेमे जो प्रयत्न जगा, उसका फल है प्रथम भङ्गकी उत्पत्ति ।

सप्तभङ्गीमे द्वितीय भङ्गकी निष्पत्तिका कथन—

अब अगले भङ्गोंकी बात सुनिये जैसे उस प्रथम भंगकी निष्पत्तिमे यह संशय कारण है इसी प्रकार द्वितीय आदिक भङ्गोंकी उत्पत्तिमे भी उस उस प्रकारके संशयज्ञान कारण हैं । जैसे कथंचित् घटका अस्तित्व तथा सर्वथा घटका अस्तित्व इन दो कोटिके संशयोंकी सम्भावना है । और इस संशयको दूर करनेके लिए प्रथम भङ्ग बना है । ऐसे ही एक दूसरा संशय यह हो सकता है कि कथंचित् घटका नास्तित्व है या सर्वथा घटका नास्तित्व है । घटके सम्बन्धमे पहिले तो यह जाना गया था कि घट है और फिर जाना गया कि घट नहीं भी है अर्थात् अन्य पदार्थोंके स्वरूपसे नहीं है । तो इस द्वितीय भङ्गकी उत्पत्तिमे पहिले यह संशय जगा था कि घटका असत्त्व जो कहा जा रहा है सो क्या यह कथंचित् घटका असत्त्व है या सर्वथा घटका असत्त्व है ? इस विवरणको सुगमतया समझना है तो यो समझिये कि घटपर स्वरूपसे नहीं है यह बात है या घट स्व और पर सबके रूपसे नहीं है यह बात है ? उसके उत्तरमे कहा गया कि घट कथंचित् नही है । अर्थात् कपड़ा आदिक अन्य द्रव्योंके स्वरूपसे नही है । तो इस द्वितीय संशयके निवारण करनेके लिए यहाँ द्वितीय भङ्गकी उत्पत्ति हुई है । इस संशय ज्ञानमे कथंचित् और सर्वथा उन दो विरोधी धर्मोंसे दो कोटियाँ बनती हैं संशयज्ञान होता है विरुद्ध धर्मोंके सम्बन्धमे । तो यहाँ विरुद्ध धर्म है कथंचित् और सर्वथा । बस, कथंचित् और सर्वथाका आश्रय लेकर जो दो कोटियाँ बन जाती हैं और उसमें संशयज्ञान बनता रहता है तो उस संशयज्ञानके निवारण करनेके लिए सप्तभङ्गोंके भङ्ग निष्पन्न होते जा रहे हैं । यो सप्तभङ्गोमे जो प्रथमभङ्ग कहा है घट कथंचित है उसके आधारभूत संशयकी बात भली प्रकार बतायी गई है और द्वितीयभङ्गमे जो यह कहा है कि घट कथंचित् नही है उसके आधारभूत द्वितीय संशयज्ञानकी भी बात कही गई है । जितने संशयज्ञान होते हैं उनका निवारण करनेसे उतने ही अधिगममें भंग हो जाया करते हैं ।

भङ्गोंकी सात संख्यासे अधिक संख्या हो जानेकी शंका—

सप्तसंख्याके सम्बन्धमे अन्य आचार्योंने भी कहा है कि सत्त्वादिक भङ्ग ७ होते हैं क्योंकि पदार्थके परिचयके सम्बन्धमें भी ७ संशय हुआ करते हैं और उन ७ संशयोंमे अन्तर्निहित ७ जिज्ञासायें होती हैं । जब यो प्रश्न ७ हुए तो उत्तर भी ७ होते हैं । अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि यह सब व्याख्यान तभी सुयुक्त हो सकता

है जब कि धर्मोंके ७ ही भेद सिद्ध हो, परन्तु धर्म ७ ही हैं यह सम्भव नहीं है क्योंकि प्रथम द्वितीय धर्मकी तरह क्रम और अक्रमसे योजित प्रथम तृतीय आदिक ७ धर्मोंसे भिन्न अन्य धर्म सिद्ध होते हैं इसलिए ७ ही प्रकारके धर्म हैं यह नियम नहीं हो सकता तात्पर्य इसका यह है कि जैसे ये तीन भङ्ग किए हैं—स्याद्‌अस्ति, स्याद्‌नास्ति और स्याद्‌अस्तिनास्ति। तो कहते हैं कि वहाँ पहिला व दूसरा भङ्ग मिलाकर तीसरा भङ्ग बनानेकी तरह पहिला और तीसरा भङ्ग मिलकर एक भङ्ग और बना दो। जैसे अवक्तव्यके साथ पहिला, दूसरा व तीसरा भङ्ग जोड़ा गया है, यों अस्तिके साथ भी अस्ति नास्ति और जोड़ दिया जाय तब यह धर्म एक अलग हो गया। तब ७ ही धर्म होते हैं यह बात तो सिद्ध नहीं होती। इसी तरह प्रथम तृतीय आदिक धर्मोंको क्रमसे या अक्रमसे लगानेपर अन्य भी भिन्न धर्म हो गया। ऐसे ही उन अन्य धर्मोंको चतुर्थके साथ जोड़ देनेसे भी अन्य धर्म सम्भव होते हैं। तब धर्म ७ ही हैं यह नियम संगत न रहा।

मानसे अधिक भङ्ग हो जानेकी शंकाका समाधान—

अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का करना संगत नहीं है, क्योंकि क्रम व अक्रमसे योजित प्रथम और तृतीय धर्मोंको जो लगाया है सो इस तरह से कोई धर्म है ऐसा प्रतीतिरूपमें नहीं है। मायने जैसे स्याद्‌अस्ति कहकर लोग समझते हैं कि यह कहा गया, स्याद् नास्ति कहकर लोग जानते हैं कि यह कहा गया, ऐसे ही स्याद अस्ति स्याद अस्ति नास्ति, इस तरह जोड़कर कोई धर्म बना यह लोगोंको प्रतीत नहीं होता। स्याद अस्ति घट इस प्रथम वाक्यमें क्या कहा गया? घटपनेसे सहित घट कहा गया याने घटमें घटत्व है, उस घटत्वसे सहित घट कहा गया। अब घटमें दो सत्त्व सम्भव नहीं हैं। यदि कहो कि यह घट मृत्तिकामय है तो देखो, घट घटपनेसे सहित है और घट मृत्तिकामयपनेसे सहित है। तो देखो! घटमें दो धर्म आ गए। घटत्वसे युक्त सत्त्व और मृत्तिकामयपनेसे युक्त सत्त्व। तब धर्मान्तरकी लोकसे प्रतीति नहीं है, यह कहना तो युक्त नहीं है। इसके भी समाधानमें कहते हैं कि देखिये! घटपनेसे सहित सत् ऐसा जब कहा गया तब एक स्वतन्त्र धर्म विदित हुआ। और जब कहा जाय कि मृत्तिकामयपनेसे सहित सत् तो इसमें मृत्तिकामयत्व धर्म स्वतन्त्र हुआ। अर्थात् मृत्तिकामयपनेसे सहितके ७ भङ्ग अलग लगेंगे। जैसे घट अस्ति इसके ७ भंग बनाये ऐसे ही मृत्तिकामय है तो काठमय नहीं है। अवक्तव्य है, आदिक फिर ७ भङ्ग मृत्तिकामय अलग बनेंगे। सप्तभङ्गीसे सम्बन्धि चीज ८ वीं नहीं होती। यों तो जितने पदार्थोंकी बात कही जायगी उतनेके ही भङ्ग लगेंगे। तो इस हेतुसे अन्य सप्तभङ्गी तो सिद्ध हो जायेंगे, पर एक सप्तभङ्गीमें ७ धर्मोंसे अलग कोई धर्म बने यह सम्भव नहीं है।

एक धर्मके विषयमें दो नास्तित्वकी असंभवता होनेसे द्वितीय व तृतीय भग सयोजनाकी अयुक्तता—

ॐ

प्रथम और तृतीय धर्मकी योजनासे जैसे कि अन्य धर्मकी सिद्धि नही हुई यों ही क्रम और अक्रमसे अर्पित द्वितीय और तृतीय योजनामे अन्य धर्म सिद्ध नही होता, अर्थात् जैसे स्याद अस्ति स्याद अस्ति नास्ति यों मिलकर कोई धम नही होता। इसी तरह स्यादनास्ति स्याद अस्ति नास्ति यों मिलकर भी कोई धर्म अलग नही होता। एक धर्मके विषयमें जैसे दो सत्त्व असम्भव हैं इसी प्रकार एक पदार्थके विषयमें दो नास्तित्व असम्भव हैं। जैसे एक धन्नीमें काष्ठमय घटके सत्त्वका अभाव है वह मृतिकामय है,—काष्ठमय नही है तो उससे भिन्न मृत्तिकामय घटकी सत्ता सम्भव है। दो नास्तित्व सम्भव नहीं, दो अस्तित्व सम्भव नहीं, किन्तु अपेक्षासे एक पदार्थमे अस्तित्व और नास्तित्व सम्भव है, इसीकारण किसी भी एक मूल धर्मको लेकर उसके परिचय मे बढें तो दो बातें भिन्न सिद्ध न होगी। एक ही पदार्थमें अपेक्षासे ७ धर्म ही सिद्ध हो सकते हैं।

प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतुर्थ भगकी सयोजनापर शका—

ॐ

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि प्रथम चतुर्थ तथा द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतुर्थ इन धर्मोकी एक साथ योजनासे फिर धर्मान्तरकी सिद्धि कैसे हुई? इन ७ भङ्गो मे स्याद अस्ति स्यादनास्ति स्याद अस्तिनास्ति, स्याद अवक्तव्य जैसे ये चार पहिले भङ्ग हैं तो इनमें पहिले और तीसरे मिलकर कोई भङ्ग नही बनता। स्याद अस्ति, स्याद अस्तिनास्ति यों मिलकर भङ्ग नहीं बनता और दूसरा तीसरा मिलकर भी नहीं बनता। स्याद अस्ति, स्याद अस्तिनास्ति क्यों नहीं बनता कि एक पदार्थमे दो सत्ता नहीं। स्यान्नास्ति स्यादस्ति नास्ति भङ्ग क्यों नहीं बनता? यों कि एक तत्त्वमें दो असत्ता नही। इसपर शङ्का यो की जा रही है कि ऐसे प्रथम और चतुर्थ मिलकर व द्वितीय चतुर्थ मिलकर भी भङ्ग नहीं बने। जैसे बताया गया स्यादस्ति अवक्तव्य, स्याद नास्ति अवक्तव्य तो जब पहिला तीसरा न मिल सका, दूसरा तीसरा न मिल सका तो पहिला चौथा भी न मिले, दूसरा चौथा भी न मिले, तीसरा चौथा भी न मिले, वे भी कभी धर्मान्तर सिद्ध न हो, लेकिन तुमने तो धर्मान्तर ही सिद्ध किया है। स्याद अस्ति अवक्तव्य यो कहा है कि अवक्तव्यपनेके साथ स्याद अस्तिकी योजना की है और आगे स्यात् अवक्तव्यके साथ स्याद्नास्तिकी योजना की है। तो इस प्रकारसे जिस क्रम से योजित दो अस्तित्वमे दूसरे अस्तित्वका कुछ प्रयोजन नही है क्योंकि एक पदार्थमें दो सत्त्वको असम्भव कहा है तो इसी तरह एक साथ लगाये गये अस्तित्व नास्तित्वमे नास्तित्व भी नही रह सकता। क्योंकि जहाँ एक धर्म विषयक एक नास्तित्व है वहाँ

अन्य नास्तित्व भी सम्भव नहीं है। तब इस तरह प्रथम चतुर्थ मिलकर भी धर्मान्तर मत बनो।

प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ, तृतीय चतुर्थ भंगकी संयोजनाका समाधान—

उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये ? अवक्तव्यपनेके साथ जो अस्तित्व नास्तित्व लगाया गया है वह उभयरूपसे नहीं है, किन्तु एक साथ योजित अस्तित्व नास्तित्व इन दोनों धर्मोंका सर्वथा कथन नहीं कर सकते थे इसलिए अवक्तव्यरूप भङ्ग धर्मान्तर ही है। जैसे कहा गया कि पदार्थ स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है इस बात को यदि एक साथ योजित किया जाय, प्रथम और द्वितीय धर्मको एक साथ बोला जाय तो नहीं बोला जा सकता, अतएव वह कहनेके लिये अशक्यरूप एक धर्मान्तर है, किन्तु कोई दो सत्ता नहीं मिलायी गई। एक पदार्थमें दो सत्ता नहीं मिलती। अगर किसी अपेक्षासे दो सत्ता समझने आयें तो वे भिन्न भिन्न धर्म हो गए। वहाँ सप्तभङ्गी न्यारे न्यारे लगेंगे, पर सप्तभङ्गोंमें कोई एक भङ्ग बढ़कर ८ भङ्ग हो जायें सो सम्भव नहीं है, इसी तरह सत्वके साथ अवक्तव्यपना लगे यह भी धर्मान्तर है। तब यह छल नहीं कर सकते कि यदि प्रथम और तृतीय धर्म नहीं मिलते, द्वितीय और तृतीय नहीं मिलते तो प्रथम चतुर्थ भी न मिलें, ऐसी शङ्का नहीं कर सकते। अवक्तव्यपना एक स्वतंत्र धर्म है। कितनी ही चीजें, द्रव्य और पर्याय दृष्टिसे जानी गई बात एक साथ कही नहीं जा सकती इसलिए अवक्तव्य है।

सप्तभंगोमें विभिन्न पद्धतिसे तत्त्वकी झलक—

अब इन ७ भङ्गोंमें जो कुछ झलक हुई है उसका ब्योरा सुनो। प्रथम भङ्ग कहा गया है—'स्यादस्ति एव घट' तो इसमें सत्त्वकी प्रधानतासे प्रतीति कराई गई है। दूसरे भङ्गमें कहा गया है—'स्यादनास्ति एव घट' इसमें असत्वकी प्रधानतासे प्रतीति कराई गई है। तृतीय भङ्गमें क्रमसे अस्ति नास्तिकी योजना की है, तब क्रमसे सत असतकी प्रधानतासे प्रतीति है, क्योंकि किसी अपेक्षा घटका अस्तित्व और किसी अपेक्षासे घटका नास्तित्व अनुभवमें आ रहा है। अब यहाँ कोई दोष न दिखाये कि भिन्न-भिन्न दो पदार्थोंको भी क्रमसे लगा दो, क्योंकि दो सत्वोंको, दो पदार्थोंको क्रमसे योजित करके सप्तभंगी नहीं बन सकती। अस्तित्व और नास्तित्व इनकी योजना तो हो जायगी एक सप्तभंगीमें, पर दो अस्तित्व अथवा दो नास्तित्वकी योजना नहीं लगी तो यह एक धर्म नहीं बताया कि स्यादस्ति स्याद अस्ति नास्ति। अस्ति नास्ति कहनेमें जब एक बार सत्तापना आ गया तो अब स्याद अस्तिपना उसमें नहीं जुड़ सकता। इसी तरह यों भी कोई नहीं जुड़ा सकेगा कि स्यादनास्ति, स्याद अस्तिनास्ति

जब स्याद अस्ति नास्तिमे एक नास्ति आ गया तो उसके साथ दूसरा नास्तित्व नहीं लगा सकते। अव्यक्त न अस्तिरूप है न नास्तिरूप है, किन्तु अस्ति और नास्तिको एक साथ कहना अशक्य है। इस अशक्यताको अवक्तव्यपना कहते हैं। इस कारण अवक्तव्यपना अस्तिके साथ भी लगेगा, नास्तिके साथ भी लगेगा और अस्ति नास्तिके साथ भी लगेगा। यह बात बहुत ध्यानसे समझना है कि ७ भगोमे कोई सा भी भग ऐसा नहीं है जिसमे कि दो अस्तित्व बताये हो या दो नास्तित्व बताये हो। यों तीन भगो की बात जानकर अब चौथे भङ्गमे देखो ! उसमें अवक्तव्यपनेकी प्रधानता है। स्याद अवक्तव्य याने अस्तित्व और नास्तित्वको एक साथ कहा नहीं जा सकता, उसे अवक्तव्य कहते हैं। तो अवक्तव्यमे किसकी प्रधानता हुई ? क्या अस्तित्वकी हुई ? नही ! क्या नास्तित्वकी हुई ? नही ! किन्तु अस्तित्व और नास्तित्व दोनो एक साथ कहे नही जा सकते। इसलिए अस्तित्वपनेकी प्रधानता है। पञ्चभङ्गमे सत्वसहित अवक्तव्यपनेकी प्रधानता है। भङ्ग कहा गया है स्याद अस्ति अवक्तव्य तो इसमे सत्तास हत अवक्तव्यपना दिखाया गया है। छठे भङ्गमे कहा है—स्यादनास्ति अवक्तव्य इसमें नास्तित्व सहित अवक्तव्यपनेकी प्रधानता वताई गई है, और ७ वें भङ्गमे क्रमसे लगाये गए सत्व और असत्वसे सहित अवक्तव्यपनेकी प्रधानता है। यो खूब परखलो कि इन ७ भङ्गोमे किसी भी भङ्गमे दो अस्तित्व नहीं जुडे और दो नास्तित्व नहीं जुडे। इस तरह ७ भङ्गोका विवेचन समझना चाहिए।

प्रत्येक भगमे स्वयकी प्रधानता व अन्यकी गौणता—

❀

प्रथम भङ्गसे क्या बोध हुआ ? स्याद अस्ति एव घट । तो अब अन्य भङ्गोमें जो असत्वादिकका भान होता है सो वहाँ गौणता है न कि निषेध ! जैसे बोला गया कि घट अपने स्वरूपसे है, ऐसा कहते ही यह बात जाहिर होती है कि घट पररूपसे नही है। लेकिन जो कहा गया उसमे उसकी प्रधानता है, और जो नहीं कहा गया, उसका भान होनेपर भी उसकी गौणता है। जैसे जब दूसरा भग बोला गया—स्याद नास्ति घट घट पररूपसे नहीं है, तो ऐसा कहनेमे नास्तित्वकी प्रधानता है और अस्तित्वकी गौणता है, लेकिन निषेध अन्यका यहाँ नहीं है। ७ वाक्योंमें यह बात समझनी चाहिये कि जिस समय जो भग कहा गया उस भगमे उस तत्वकी प्रधानता है और अन्य भगोके तत्वकी अप्रधानता है। भान सबका है उसको, क्योंकि नयोंका प्रयोग वहाँ ही सत्य है जहाँ प्रमाणसे पदार्थको सर्वतोमुखी जान लिया गया। अर्थात प्रमाणसे जाने गए पदार्थमें एक देश धर्मको ज्ञात करना नय कहलाता है। नयसे जानी हुई चीजमे भी ७ भग होते हैं। प्रमाण सप्तभगी और नय सप्तभगी दोनो ही पद्धतियोसे सप्तभगीका वर्णन किया जाता है।

वक्तव्यन मक अधिक भङ्गकी अनावश्यकता—

卐

यहां कोई यह भी सन्देह रख सकता है कि ७ भगोमे अवक्तव्यपनेको एक भग कहा गया है तो एक वक्तव्य भी भग बन जाय। जब वस्तु स्याद् अवक्तव्य है तो वस्तु स्याद् वक्तव्य भी है। तो एक वक्तव्यपना क्यो नही बढा देते ? ऐसी शङ्का यो युक्त नही है कि वक्तव्य शब्द न कहकर जो भी कहा गया वह वक्तव्य ही तो रहा। स्याद् अस्ति क्या है ? वक्तव्य ! स्यादनास्ति क्या है ? वक्तव्य ! लेकिन, वक्तव्य इस शब्दसे अगर भग किया जाय तो फिर वक्तव्यकी सप्तभगी अलग बन जायगी। स्याद् वक्तव्य, स्यादवक्तव्य इस तरहसे उसके ऊपर ७ भग और बन जायेंगे। पर, वक्तव्य न म जुडकर ७ भगोसे अलग भग बनाया जाय, यह बात सम्भव नही है, क्योंकि सामान्यसे वक्तव्यपना कोई भिन्न धर्म नही ! स्याद अस्ति आदिक कहकर जो कहा गया वह सब वक्तव्य ही है। ऐसा वक्तव्यपना प्रथम भग द्वितीयभग आदिकमे बराबर पाया जाता है। यदि वक्तव्य शब्द ही कहकर धर्म मानवायें तो उसकी सप्त-भगी अलग हो जायगी। जैसे सत्व और असत्वमे विधि प्रतिषेधकी कल्पनासे सप्त-भगी बनी ऐसे ही वक्तव्य और अवक्तव्यमे विधि और प्रतिषेधकी कल्पनासे सप्तभगी अलग ही बनेगी। उक्त समस्त कथनोसे यह सिद्ध हुआ कि धर्मोमे ७ भेद हैं। उनकी जिज्ञासा भी ७ है, प्रश्न भी ७ हो सकते हैं। इस कारण उनके उत्तररूप जो वाक्य निकले वे सप्तभगीमे ७ ही भग हुए, अधिक सख्या नही हो सकती।

सप्तभङ्गीमे अधिकसख्य व्यवच्छेदकी तरह न्यूनसख्याव्यवच्छेदकी भी सिद्धि—

卐

शङ्काकार कहता है कि उक्त प्रकारसे सप्तभङ्गीमे अधिक सख्याका निराकरण किया अर्थात् भङ्ग ७ से अधिक नही होते। तो इस तरह अधिक सख्याका निराकरण करनेपर भी यह निराकरण तो न हुआ कि कम सख्या भी होती है। शङ्काकार कह रहे हैं कि भङ्ग ७ से कम ही होते हैं, ७ नही हो सकते। कारण यह है कि जैसे कहा कि स्यात् घट है, और दूसरा भङ्ग बनाया है कि स्यात् घट नही है, तो इन दोनोका मतलब तो एक ही है। घट अपने स्वरूपसे है यह तो प्रथम भङ्गका स्पष्टीकरण है। तो इस हीके मायने यह हो गया कि घट पररूपसे नहीं है। तो देखो ! यदि घटादिक के अस्तित्व वाले ७ धर्म प्रमाणीक हो तब तो सप्तभङ्गी बने, किन्तु ७ धर्म प्रमाणीक नही हैं वे तो पुनरुक्त हैं। प्रथम भङ्गमे कहा कि स्वरूपसे है, उसीका अर्थ है कि पर-रूपसे नही है। इसी तरह सत्त्व और असत्त्वमे भेद नही है। जो स्वरूपसे सत्त्व है वही पररूपसे असत्त्व है। घट तो वही है ना, उसीमे कभी स्वरूपसे सत्व दीखा और पररूप से असत्त्व दीखा। चीज तो एक ही दीखी। इस तरह प्रथम और द्वितीय भङ्ग घटित नही होते, क्योकि इनमेंसे कोई एक कह दिया जाय तो दूसरा अपने आप सिद्ध होता

है। जब कहा कि घट अपने स्वरूपसे है तो दूसरी बात स्वय सिद्ध है कि घट पररूपसे नही है। कोई ऐसी प्रमुखतासे कहे कि घट पररूपसे नही है तो इसका अर्थ यह स्वय सिद्ध हो गया कि घट स्वरूपसे है। तो जब प्रथम और द्वितीय भङ्ग ही न बने तो इसके आधारसे जो शेष अन्य भङ्ग बनाये जाते हैं वे भी न बनेगे, फिर सप्तभङ्गी न रही, बहुत ही अल्प भाग रह गये। इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि देखिये! पहिले भगमे कहा गया है—स्वरूपसे सहित सत्त्व, और दूसरे भगमे कहा गया है— पररूपसे अविच्छिन्न असत्त्व। तो इन दोनोंमे भेद है। स्वरूपसे अविच्छिन्न सत्व और पररूपसे अविच्छिन्न असत्ता इन दोनोंमें यदि भेद न हो तो स्वरूपसे सत्व कहा तो पर-रूपसे भी सत्व बन बैठेगा। तो भेद तो न रहा। पररूपसे असत्त्व कहा तो स्वरूपसे भी असत्त्व बन बैठेगा, इस कारण अवच्छेदक भेद अवश्य है। और भी देखिये! सत्त्व होता है किसी आधारमे, सत्त्व आधेय है और जिसमे सत्त्व बताया वह पदार्थ आधार है। जैसे कहा है कि इस जमीनपर घट है तो इससे जमीनपर है वृत्ति जिस की, जमीनपर है अस्तित्व जिसका, ऐसा घट समझाया गया है, और जब कहा कि जमीनपर घट नहीं है तब वहाँ जमीनमें रहने वाला जो घटका अभाव है उसका प्रति-योगी घट है, यह समझा गया तो इस तरह सत्त्व और असत्त्वमें स्वरूपसे भेद है ही। देखिये! जब कहा कि इस कमरेमें घड़ा है तो दिमाग और बना। भूतलनिष्ट घटका सत्त्व समझमे आया, इस रूपका घट जाना गया। और जब कहा जाय कि इस कमरे मे घडा नही है तो कमरेके आधारमें घड़ेका अभाव है, उसका प्रतियोगी घट है इस तरहसे समझमें आया। तो स्वरूपसे अविच्छिन्न सत्त्व और पररूपसे अविच्छिन्न सत्त्व का अभाव इन दोनोमें स्वरूपभेद है ही इस कारण यहाँ पुनरुक्तपना नही आता। प्रथम भङ्गका वाच्य भिन्न है, द्वितीय भङ्गका वाच्य भिन्न है, किन्तु कथन है एक धर्मी पदार्थमे।

अन्य दार्शनिको द्वारा भी सत्त्व व असत्त्वमे भेदका समर्थन—

❀

अस्तित्व नास्तित्व भङ्गके समर्थनमे और भी सुनो! जैसे सौगत आदिक हेतुको त्रैरूप्य मानते हैं। अनुमान जब बनाते हैं तो अनुमान वह सही है इसकी जान-कारी करनेके लिए हेतुकी परख की जाती है। जिस हेतुमें पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्ष असत्त्व ये तीन बातें पाई जायें वह हेतु सही माना गया है। मायने हेतुका पक्षमे रहना, हेतुका सपक्षमे रहना हेतुका विपक्षमे न रहना ये तीन गुण जब हेतुमे विदित हो जायें तो उस हेतुने साध्यकी सिद्धि मानी गई है। जैसे कि कहा गया है अनुमान कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे। तो धुवाँ होनेमे, यह हेतु पर्वतमे पाया जाता, इस कारणसे हेतुमें पक्ष धर्मत्व है और उसका दृष्टान्त सपक्ष है। रसोईघर याने जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। इस अन्वय व्याप्तिका उदा-

हरण जो बताया जाय उसे इस हेतुका सपक्ष कहते हैं। तो रसोई घरमे भी धुवाँ है, यो सपक्ष सत्व बन गया और विपक्षमे न रहना सो विपक्षासत्व है। जब इस ही अनुमानमे व्यतिरेक व्याप्ति बनाई जाती है कि जहाँ अग्नि नही होती, वहाँ धुवाँ भी नहीं होता। तो अग्निके अभावमे, साध्यके अभावमे साधनका अभाव कहना यह व्यतिरेक व्याप्ति है। तो यहाँ विपक्षका उदाहरण दिया गया है तालाब। तालाबमे न अग्नि है न धुवाँ। तो तालाबमे धुवेका अभाव है इस तरह हेतुके तीन गुण परखे जाते हैं—पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षासत्त्व। तो इस तरह जो सौगत आदिक हेतुको त्रिरूप मानते है अथवा जो नैयायिक आदिक हेतुमे पंचरूपता मानते हैं— प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। फिर इनके विस्तारमे व्याप्ति, सपक्ष, विपक्ष सभी उपयोगी प्रसङ्ग आ जाते हैं। तो इन दार्शनिक यहाँ भी बुद्धादिकके यहाँ और नैयायिक आदिकके यहाँ, त्रिरूप और पञ्चरूप मानने वालोके यहाँ भी देखो! सपक्षसत्त्वकी अपेक्षासे विपक्षासत्व भिन्न ही माना गया है नही। कोई वहाँ यह कह सकता था कि सपक्षमे हेतुका रहना इससे ही यह सिद्ध होता है कि विपक्षमे हेतुका न रहना। जैसे कथंचित् है इसका भाव यह बताकर कि कथंचित यह नहीं है, सत्व और असत्वमे अभेद कर डाला। यो ही सपक्षसत्वमे और विपक्षासत्वमे भी भेद कर डाला जानेसे फिर उन लोगोका माना हुआ त्रिरूप और पञ्चरूप हेतु न रहेगा। तो देखो! सत्व और असत्वमे भेद अन्य दार्शनिकोंने भी माना है। इसी तरह सप्तभङ्गीमे प्रथम भङ्गमे कहे गये अस्तित्वका और द्वितीय भङ्गमे कहे गये नास्तित्वका भेद है। तब यह कहना ठीक नही है कि स्यादस्तिका ही अर्थ है स्याद् नास्ति। फिर यो ७ भङ्ग नही रहते, बहुत कम भङ्ग रह जाते हैं।

स्यादस्ति नास्तिकी योजनामे शङ्का—

अब शङ्काकार कहता है कि चलो प्रथम भङ्गमे और द्वितीय भङ्गमे तुमने भेद कर दिया सो ठीक है। मान लिया थोडी देरको, लेकिन तृतीय भङ्गमे तो अर्थात् कथंचित् है, कथंचित् नही है, इस तीसरे भङ्गमे तो अस्तित्व और नास्तित्व क्रमसे जोडे गए। तो अब यह बतलाओ कि क्रमसे जोडे गए अस्तिनास्तिमे कथंचित् सत्वरूप जो प्रथम भङ्ग है उससे भेद क्या रहा? पहिले दो बातें कही गईं—स्यादस्ति, स्यादनास्ति। अब तीसरे भङ्गमे यह कहना कि क्रमसे स्यादस्ति स्यादनास्तिका उभय क्या रहा? देखिये! प्रत्येक घट पटकी अपेक्षासे घटपटका उभय क्या कही भिन्न हुआ करते हैं? जैसे यहाँ यह घडी और यह पुस्तक रखी है तो यो कहना कि यह घडी है, यह पुस्तक है और क्रमसे अर्पित ये दोनो हैं। तो क्रमसे अर्पित दोनोमे और पुस्तक है, घडी है, ऐसी दो बातें अलग कहनेमे भेद क्या रहा? चीज तो वे दो ही ग्रहणमे आई—कोई दूसरी बात ग्रहणमे नही आई। स्यादस्ति कहा, स्यादनास्ति

कहा। दो भङ्ग बोल दिये जायेंगे। अब तीसरा भङ्ग यों बोलने कि क्रमसे अस्ति नास्ति तो यह तीसरी कौनसी बला हो गई? हैं तो दो ही बातें—अस्तित्व और नास्तित्व। तो जैसे प्रत्येक घट पटकी अपेक्षासे घट पटका उभय कोई दूसरी चीज नहीं है, इसी तरह प्रथम और द्वितीय भङ्गकी अपेक्षासे क्रमशः लगाये गए प्रथम द्वितीय भङ्ग भी कोई जुदी चीज नहीं हैं। सो अब तो सप्तभङ्गी न रही। मान लो प्रथमके दो भङ्ग सही हैं, लेकिन तीसरा भङ्ग कोई भिन्न न ठहरेगा।

क्रमशः अर्पित स्यादस्ति नास्तिकी योजनाका समर्थन—

❀

उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि भाई यह शङ्का करना युक्त नहीं है कि प्रथम और द्वितीय भङ्गकी अपेक्षासे याने प्रत्येककी अपेक्षासे उभय कोई भिन्न चीज नहीं है। है भिन्न चीज। प्रत्येककी अपेक्षासे उनका समुदाय भिन्न है, ऐसा प्रतीतिसे सिद्ध है तभी तो देखो घ एक अक्षर है और ट एक अक्षर है, यों अलग अलग दो अक्षरोंका होना और क्रमसे घ और ट दो अक्षरोंका उभय मिलना यह भिन्न चीज है या नहीं? सभी लोग मान जायेंगे कि अलग अलग घ और ट अक्षरका मूल्य, स्वरूप, ध्वनि जुदा है और क्रमसे घ और ट इन दो अक्षरोंके बोलनेमें जो घट पद बनता है उसकी ध्वनि अलग है। वह उससे अतिरिक्त चीज है, अन्यथा याने अलग अलग रहने वाले घ और ट मिलकर क्रमसे योजित घट इनको यदि एक मान लिया जाय तो कभी कोई घ इतना ही बोले तो उसे घटका ज्ञान हो जाना चाहिए। क्योंकि अलग रहने वाले अक्षर और मिलकर बनाये गए अक्षर इन दोनोंमें तुम भेद नहीं मानते। जब भेद नहीं मानते तो प्रत्येक घ आदिककी अपेक्षासे घट पदसे अभिन्न माननेपर घ आदिकके उच्चारणसे ही घट ज्ञान सम्भव हो जाय और जब ट बोला तो ट के बोलनेसे घट समझा जाय कि पट समझा जाय ये सब विडम्बनायें बन जाती हैं। और फिर जब किसी एक अक्षरके बोलनेसे ही पूरा पदार्थ आ जाता है तब शेष अक्षरोंके बोलनेकी बात व्यर्थ हो जायगी। और, भी सुनो—मालामें दाने अनेक पिरोये गए। अब यह बतलाओ कि भिन्न भिन्न जो एक एक दाने हैं उन दानोंसे मालामें कथंचित् भेद है कि नहीं, या एक एक दाना सो ही माला? अगर एक एक दानेका ही नाम माला बन जाय तो कहीं बिखरे पड़े हुये जो दाने हैं उनमें तो मालाका अभेद हो गया, फिर उसमें दूसरोंका सन्मान करो अथवा उनसे जाप जपो। तो प्रत्येक दानेकी अपेक्षासे मालामें कथंचित् भेद है, यह बात सबके अनुभवमें सिद्ध है। इसी तरह स्याद अस्ति यह एक भङ्ग है। घट स्वरूपसे है—स्यादनास्तिघट यह दूसरा भङ्ग है, घट पररूपसे नहीं है, ये दो भङ्ग जुदे जुदे हैं। इनमें जुदा है यह तीसरा भङ्ग अर्थात् क्रमसे योजित ये दोनों बातें जिनमें कि बुद्धि समझ कुछ भिन्न बनती है, यह तीसरा भङ्ग जुदा है। इस तरह कथंचित सत्त्वकी अपेक्षासे कथंचित असत्त्वकी अपेक्षासे क्रमसे लगाई गई ये दोनों चीजें

जुदी हो गई अर्थात् स्याद अस्ति यह प्रथम भङ्ग भी सिद्ध है, स्याद नास्ति यह द्वितीय भङ्ग भी सिद्ध है और स्याद अस्तिनास्ति यह तृतीय भङ्ग भी सिद्ध है, इसमे पुनरुक्तता नही आती।

क्रमार्पित उभय और सहार्पित उभयके स्वरूपमे भेद न होनेकी आशंका —

उक्त प्रकारसे प्रथम दो भङ्गोसे तृतीय भङ्गकी अतिरिक्तता सुनकर शङ्काकार कहता है कि भले ही प्रथम द्वितीय भङ्गसे अतिरिक्त तृतीय भङ्ग बन जाय मगर अवक्तव्यमे तुम यह कह रहे हो कि एक साथ योजित अस्तिनास्ति। अवक्तव्यका अर्थ यह है कि अस्तिनास्ति। इन दोनोको अगर एक साथ जोडा जाय तो कहा नही जा सकता उसीको कहते हो अवक्तव्य। तो क्रमसे जोडे गए अस्तिनास्तिमे और एक साथ जोडे गए अस्तिनास्तिमे किसी तरह भेद हो ही नही सकता। यह तो केवल शब्दमे रहने वाला भेद है कि शब्दोंसे कह दिया कि इसमे अस्तिनास्ति क्रमसे लगाया है। इसमे अस्तिनास्ति एक साथ लगाया है। और, चाहे क्रमसे बोले, चाहे एक साथ बोले, गाँठ मे बात तो उतनी ही है स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व, यहाँ तो कोई बात बढी नही, यह तो केवल शब्दोमे रहने वाला भेद है। पदार्थमे रहने वाला भेद नही है। क्योकि क्रमसे जोडा गया सत्त्व असत्त्वके उभयकी अपेक्षासे एक साथ जोडे गए सत्त्व असत्त्वका उभय कोई भिन्न चीज नही है। जैसे कि एक जमीनपर घट और पट दोनो रखे हैं। अब वहाँ यह कहा जाय कि क्रमसे योजित घट पटका उभय है, यह एक अलग चीज है और एक साथ योजित घट पटका उभय अलग चीज है, ऐसा तो भेद कोई नही मान सकता। यहाँ घडी और पुस्तक रखी है तो क्रमसे योजित घडी पुस्तक अलग चीज हुई और एक साथ योजित घडी पुस्तक अलग चीज हुई। इसका मतलब क्या है ? हैं तो दो ही चीजें। क्रमसे और अक्रमसे मतलब क्या ? तो आपके ये अन्य भेद नही बन सकते हैं।

क्रमार्पित उभय व सहार्पित उभयमे भेद न होनेपर भी हानि न होनेकी एक प्रतिशंका—

शङ्काकार कह रहा है कि यदि यह कहो कि क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्वका उभयकी अपेक्षासे एक साथ योजित सत्त्व असत्त्वके उभयका भेद भी कुछ न हो फिर भी कोई हानि नहीं है। हानि तो यह मानी जा रही थी कि ७ भङ्गसे कम भङ्ग लगाये जायें। सो तुम इसका उत्तर यह दे लोगे कि पुनरुक्ति दोषरहित ७ वाक्योका समुदाय ही सप्तभगी है। याने उसमे तो लगा दिया शब्द क्रम और इसमे शब्द लगा दिया 'एक साथ' तो अब इन भगोमे फर्क हो गया। यो शब्दका विलास बताकर कह सकते हो कि पुनरुक्ति दोष नही है इसलिए भग ७ हैं। और यो ७ प्रकारसे वचन-

मार्गकी प्रवृत्तिमे कोई बाधा नही है। यह भी कह सकते हैं, सत्त्व असत्त्व धर्मके विषयपनेसे ७ भेदसे वचनकी मार्ग प्रवृत्ति हो सकती है न कि अधिक, क्योंकि अधिक होनेसे पुनरुक्ति दोष आता है। एक वाक्यसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसी ज्ञानके समान ज्ञानको उत्पन्न करने वाला यदि उत्तर कालका वाक्य हो तो वही तो पुनरुक्त दोष कहलाता है। जो बात पहिले कही गई वही बात फिर तुरन्त कही जाय तो उसे पुनरुक्त कहते हैं, और इस सप्तभगी नयके प्रमाणमे तृतीय भग याने स्याद अस्ति नास्तिघट और चतुर्थ भङ्ग याने स्याद अवक्तव्य एव घट। इन धर्मोंमे पुनरुक्त दोष सम्भव नहीं है, क्योंकि तीसरे भङ्गसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसमे तो अस्तित्व सहित नास्तित्व का ज्ञान कराया है। स्याद अस्तिनास्ति कह रहे तो अस्तित्व सहित नास्तित्वका बोध कराया और चतुर्थ जो अवक्तव्य भङ्ग है उससे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमे अस्तित्व नास्तित्व दोनोरूप अवक्तव्य है। तो ऐसे अवक्तव्यपनेके साथ रहकर जो प्रयोग बना उस प्रकारसे ज्ञान आता है। इस कारण तीसरे और चौथे भङ्गसे उत्पन्न हुए ज्ञानमे समान आकार न रहा। अतएक पुनरुक्त दोष नही है। यो क्रम अथवा अक्रम वाले तृतीय चतुर्थ भङ्गमे भेद न होनेपर भी कोई हानि नही, ऐसी एक प्रतिशङ्का उपस्थित हुई।

प्रतिशङ्काका समाधान करते हुए न्यूनसख्याव्यवच्छेदकी असिद्धिकी शकाका समर्थन—

अब शङ्काकार ही समाधानकारकी ओरसे शङ्का उठाकर उसका निराकरण कर रहा है, समाधानकर्ताकी इस शङ्काके निराकरणमें शङ्काकार कहता है कि इस तरहसे भेद मान लेनेपर तो ७ भङ्गोंसे अधिक भङ्गोंकी सख्या हो जाना अनिवार्य है। अर्थात् यह सिद्धान्त जब रख दिया कि क्रमसे योजित बात अन्य है, अक्रमसे योजित बात अन्य है, यो भिन्नता बताकर सप्तभङ्गी बनानेमे तो बहुतसे और अधिक भग हो सकेंगे। जैसे तृतीय चतुर्थ भगोमे पुनरुक्त दोषका अभाव उनके विलक्षण बोध उत्पन्न होनेसे मान लिया है तो ऐसे ही समझिये कि विपरीत क्रमसे याने नास्ति अस्ति ऐसे अन्य भगकी भी बात कही जायगी। जैसे कहा कि स्याद अस्ति स्याद नास्ति और स्याद अस्ति नास्ति तो एक और बढा दो। स्यादनास्तिअस्ति, क्योंकि जरा सा भी अगर बोधमे भेद हो जाता उससे तुम पुनरुक्त दोष नही मानते तो यो तो अनेक भग बनाये जा सकते हैं। कहा जा सकता है कि इसमे नास्तित्व सहित अस्तित्व बताया गया, और फिर इन दोनोंने एक साथ कहा नही जा सकता। इस तरहसे अवक्तव्यपना भी और ढगका बनेगा। जैसे अभी चौथे भगमे अस्ति और नास्तिका अवक्तव्य बनाया तो अब बना दीजिए नास्ति अस्तिका अवक्तव्य। और फिर इस तरहसे सयोगी भग भी बढ जायेंगे। और ऐसा कहते हुए हम भी यह कह सकेंगे कि जैसे तीसरे भग

मे अस्तित्व विशिष्ट नास्तित्वका बोध कराया तो हमारे इस नये भगमे नास्तित्व विशिष्ट अस्तित्वका बोध कराया । अब हुआ क्या इसमे आ । तो दोनो है लेकिन एक बन गया विशेषण और दूसरा बन जाता है विशेष्य । जैसे स्यादअस्ति नास्तिमें अस्ति विशेषण है नास्ति विशेष्य है क्योकि वहाँ यह बताया जाता है कि अस्तित्व विशिष्ट नास्तित्व । तो हमारे यहाँ प्रस्तुत भगोमे नास्तित्व तो विशेषण है और अस्तित्व विशेष्य है, क्योकि वहाँ बताया जाता है नास्तित्व विशिष्ट अस्तित्व तो लो समान आकार भी न रहा तब पुनरुक्ति दोष तो न रहा । ऐसे ही ७ वाँ भग जो बताया गया है—स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्य तो एक और बढा देगे स्यादनास्तिअस्ति अवक्तव्य । और उसमे एक नया बोध बना देगें कि नास्तित्व अस्तित्व इस उभय सहित अवक्तव्य को बताने वाला यह भग है तब ९ भगी, १० भगी ११ भगी यो कितने ही भग बन जायेंगे । तो सप्तभगी तो न रही । इस प्रकार शङ्काकारकी शकाका यह मूल प्रस्ताव कि सप्तभगसे अधिक भग नही हो सकते तो न हो पर कमती सख्याका निराकरण कैसे सिद्ध होगा ? कम सख्या बन जायगी, क्योकि स्वरूपसे अस्ति, इसका ही अर्थ है पररूपसे नास्ति । तब फिर वे दो भग क्यो रहे ? एक ही रहा । और, यदि कुछ थोडा थोडा भेद बताकर ७ भगोकी सम्हाल करोगे तो स्मरण रखना चाहिए कि फिर भेद ९, १०, ११ भी हो सकते हैं, फिर तो अधिक सख्या बन जायगी, इस कारण से सप्तभगीका नियम सही नही बन सकता कि भग ७ ही होते हैं । अब शकाकार की इस शकाका समाधान करते हैं ।

सप्तभगीमे न्यून सख्या न होनेका विवरण—

उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि ऐसी शङ्का करना ठीक नही है कि सप्त भगीमे ७ से अधिक सख्या नही होती, ७ से कम सख्या तो हो ही सकती है, क्योकि एक भगका दूसरे भगमे ही अन्तर्भाव है । उनमे अभेद है । ऐसी शङ्का करना यो युक्त नही है कि ७ भगोमे ही अपने अपने पृथक विषय और दृष्टिकोण हैं । प्रथम और द्वितीय भगमे तो भेद बताया ही गया था । प्रथम भगमे तो स्वरूपसे अविच्छिन्न सत्व का वर्णन है और दूसरे भगमे पररूपसे अविच्छिन्न सत्वका वर्णन है । अब आगके भगोकी बात सुनो ! कि जिनको लेकर शङ्का की गई है । तृतीय भगमे अस्तित्व और नास्तित्व इन दोनोकी प्रधानता है तथा चतुर्थ भगमे अवक्तव्यपनेरूप अन्य धर्मकी प्रधानता है । तो तृतीय और चतुर्थ भगके अभेदकी शङ्का न करना चाहिए । जैसे कि शङ्कामे कहा गया था कि क्रमसे अर्पित उभयका भग और एक साथ अर्पित उभयका भग इन दोनोमे क्या अन्तर है ? हैं तो दोनो ही बातें—चाहे क्रमसे अर्पित हो चाहे सह अर्पित हो । तो शङ्का यो न करना चाहिए कि तृतीय भग है अस्तित्व नास्तित्व का उभय और उससे विलक्षण है यह अवक्तव्यरूप धर्म । जैसे पूर्वके धर्मोमे यह बात

लगाई जाती है कि सत्व ही वस्तुका स्वरूप नही है, क्योंकि स्वरूपादिकसे जैसे सत्व माना गया है ऐसे ही पररूपादिककी अपेक्षासे असत्व भी माना जाता है। इस कारण वस्तुका स्वरूप केवल सत्व ही नहीं है। इसी तरह आगे भी देखिये। वस्तुका स्वरूप केवल असत्व ही नही है, क्योकि जैसे पररूपादिककी अपेक्षासे असत्वकी प्रतीति होती है उसी प्रकार स्वरूपादिककी अपेक्षासे सत्वकी भी प्रतीति होती है। तब ये दोनो भग भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतीति सिद्ध हुए ना। अब आगे चलो, तीसरे और चौथे भगके लिए! तीसरे भगमे बताया है कि अस्तित्वका और नास्तित्वका उभय वस्तुका स्वरूप है। सो उसमे भी यही खोज करना कि अस्तित्व और नास्तित्वका उभय ही वस्तुका स्वरूप नही है, क्योकि इस उभयमे विलक्षण कोई अन्य धर्मान्तर भी वस्तुमे अनुभूत होता है अर्थात् अवक्तव्यरूप धर्म भी प्रतीत होता है।

उदाहरणपूर्वक क्रमार्पित, सहार्पित व स्वतन्त्र भगोका समर्थन—

॥

जैसे दही, गुड और अनेक मसाले मिलाकर एक पानक द्रव्य बनाया जाता है तो उस पानक द्रव्यमे भिन्न-भिन्न केवल दही, गुड आदिककी अपेक्षासे अब कोई भिन्न जात्यन्तरका स्वाद उसमें आता है। जैसे चार-पाँच चीजें मिलाकर कोई एक पानक बनाया गया, पेय वस्तु बनाई गई तो अब उस पेय वस्तुमे स्वाद उन केवल दही, गुड आदिकसे विलक्षण है। और तब यह कह सकते हैं कि अब उस पानकका स्वरूप केवल दही गुड आदिकका चतुष्टय ही नहीं है, किन्तु उससे विलक्षण स्वाद है। और, फिर यह भी कह सकते कि उनसे विलक्षण स्वाद ही पानकका स्वरूप नहीं है, क्योंकि उनके अन्दर दही गुड आदिक सबका स्वाद भी पाया जाता है। ऐसे ही समझना चाहिए कि तृतीय-चतुर्थ भगका पार्थक्य तृतीय भगमे कहा गया है कि स्याद अस्ति और नास्ति, इनका उभय वस्तुका स्वरूप है। सो ये दोनो एक साथ कहे नही जा सकते, क्रमसे निरखेंगे तो एक-एक बात दीखेगी। ऐसी स्थितिमें यह कहा जायगा कि उन दोनोसे विलक्षण अवक्तव्यपना वस्तुका स्वरूप है, लेकिन फिर यह भी नही कह सकते कि अवक्तव्यपना ही वस्तुका स्वरूप है, क्योकि उस वस्तुमे अस्तित्व नास्तित्व धर्मकी भी प्रतीति हो रही है। तो न केवल अस्तित्व वस्तुका स्वरूप है, न नास्तित्व वस्तुका स्वरूप है और न केवल दोनोका उभय वस्तुका स्वरूप है न केवल अवक्तव्यपना वस्तुका स्वरूप है। सो और आगे भगोंमे बढ़िये। तब किसी एक धर्मको लेकर अन्य धर्मोंका अभेद करके सप्तभगीकी सख्या कम कर देना कैसे सम्भव है? एक सत्व स्वरूप तो यो नही है कि उसमे कथचित् असत्व पाया जाता। केवल असत्व वस्तुका स्वरूप यो नही है कि उसमें कथचित् सत्व पाया जाता है और केवल अलग-अलग ये रहें यह भी स्वरूप नहीं है, क्योकि वस्तुमे अस्तित्व और नास्तित्व दोनो पाये जाते हैं, और अस्तित्व नास्तित्वका उभय भी वस्तुका स्वरूप नही है, क्योकि उनसे विलक्षण

अवक्तव्यपना पाया जाता है और अवक्तव्यपना ही वस्तुका स्वरूप नहीं है, क्योंकि वहाँ कथचित् सत्त्व और कथचित् असत्वकी प्रतीति पाई जाती है। इसी प्रकार शेषके अब के तीन धर्मोंमे भी बात लगानी चाहिए। तो दृष्टिभेदसे धर्मभेद अनुभवमे आता है और इस प्रकार जब समस्त भगोका स्वरूप अपेक्षामे भिन्न-भिन्न नजर आता है तो अलग-अलग स्वभाव वाले ७ धर्मोंकी सिद्धि हो गई। जब वस्तुमे ७ प्रकारसे धर्म प्रसिद्ध हुए तो धर्मविषयक सशय भी ७ प्रकारसे हुए और ७ प्रकारके सशयोमे जिज्ञासा भी ७ प्रकारकी हुई। तो अब जिज्ञासाके समाधानमे ७ प्रकारके समाधान रूप वाक्य हुए। यो सप्तभगीका स्वरूप ७ भगोमे ही युक्तिसिद्ध है।

सप्तभगीके प्रकारोंकी जिज्ञासा—

❀

अब सप्तभगीका स्वरूप बताकर उसके प्रकार बतलाते है। सप्तभंगी दो प्रकारसे होती है—प्रमाण सप्तभगी और नय सप्तभगी। प्रमाणका लक्षण पहिले बताया गया था कि जो समस्त रूपसे तत्वार्थका अधिगम है सो प्रमाणात्मक अधिगम है और एक देश रूपसे तत्वार्थका जो अधिगम है वह नयात्मक अधिगम है। जिसके मायने यह हुआ कि प्रमाण तो समस्त रूपके विज्ञानका नाम है और नय एक देशके विज्ञानका नाम है। यो सामान्यसे व्यापक स्वरूप जानकर अब उसके सम्बन्धमे विस्तारपूर्वक स्वरूप समझनेके लिए चलो। इस समय यह जिज्ञासा हो रही है कि सप्तभगी दो प्रकारकी कही गई है—प्रमाण सप्तभगी और नय सप्तभगी। और सप्तभगी बनती है वाक्योसे। तो प्रमाण वाक्य किसे कहते हैं और नय वाक्य किसे कहते हैं? वहाँ प्रमाणरूप ७ वाक्य क्या हैं? और नयरूप ७ वाक्य क्या हैं? इस सम्बन्धमे जो निष्कर्षरूप सिद्धान्तकी बात है वह तो अन्तमे कहेगे। इससे पहिले उन सप्तभगियोके सम्बन्धमे किसका क्या अभिप्राय है? पहिले उन अभिप्रायोका प्रसग करते हैं। जिससे कि निर्णय करते-करते प्रमाण वाक्य और नय वाक्योका सही सैद्धान्तिक स्वरूप सुगमतासे समझमे आयगा।

प्रमाणवाक्य और नयवाक्यके सम्बन्धमे एक अभिमतपर विचार—

❀

प्रमाण और नय वाक्योंके सम्बन्धमे कोई संत ऐसा कहते हैं कि सकलादेश वाक्य तो प्रमाण वाक्य कहलाता है याने सम्पूर्णरूपसे पदार्थका ज्ञान कराने वाले वाक्य तो प्रमाण वाक्य हैं और विकलादेश वाक्य नयवाक्य हैं। एक अशमे पदार्थोंका ज्ञान कराने वाले वाक्य नय वाक्य हैं। वस्तुमे अभी सत्त्व असत्त्व आदिक अनेक धर्म बताये गए हैं। तो सत्त्व असत्व आदिक अनेक धर्म स्वरूप जो वस्तु है उस वस्तुके सम्बन्धमे उस वस्तुका बोध उत्पन्न करने वाला अथवा वस्तुके अनेक धर्मोका ज्ञान

कराने वाला वाक्य तो सकलादेश कहलाता और वह प्रमाण वाक्य है, किन्तु वस्तुके सत्त्व असत्त्व आदिक धर्मोंमेसे किसी एक धर्मका ज्ञान उत्पन्न कराने वाक्य विकलादेश है और वह नय वाक्य कहलाता है। ऐसा कुछ सन्तोंका सिद्धान्त है। अब उक्त सिद्धान्तके सम्बन्धमे विचार की जिये। जो लोग सकलादेशको प्रमाणवाक्य और विकलादेश को नयवाक्य मानते है उनके मतमें प्रमाण वाक्यमे भी ७ भेद बने और नय वाक्यमें भी ७ भेद बने, यह सिद्ध न हो सकेगा, क्योंकि सकलका आदेश और विकलका आदेश इस दृष्टिकोणको रख कर जब इन भङ्गोंमेसे कुछ भङ्ग विकलादेश लगेंगे और कुछ सकलादेश लगेंगे। जैसे— स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य एवं ये तीन भङ्ग पहिला, दूसरा और चौथा ये इकहरी बात बतलाते हैं इसलिए ये विकलादेश कहलायेंगे क्योंकि इन भङ्गोमे पहिलेमे तो केवल सत्त्वका और दूसरेमे केवल असत्त्वका और चौथे भङ्गमे केवल अवक्तव्य स्वरूपका सकेत किया गया है। तो अब वस्तुके एक-एक धर्मविषयक बोध कराने वाला वाक्य होनेसे ये ही मात्र नय वाक्य होंगे, उनके अतिरिक्त जो चार वाक्य हैं—तीसरा, पाँचवाँ, छठवाँ और सातवाँ—स्यादस्ति नास्ति, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य, ये भङ्ग एक को लिए हुए नहीं हैं। इनपर क्रमसे दृष्टि दें तो स्यादस्ति नास्तिमे सत्त्व असत्त्व दो धर्मोंका वर्णन है। स्याद् अस्ति अवक्तव्यमे अस्तित्त्व और अवक्तव्य इन दोका आदेश है। स्याद अस्ति अवक्तव्यमे नास्तित्त्व और अवक्तव्य इन दोका वर्णन है। और अस्ति नास्ति अवक्तव्यमे तीनका वर्णन है। तो एक एक धर्मका आदेश इसमे नहीं है। अतः ये प्रमाण वाक्य कहलायेंगे। तो सकलादेश प्रमाण वाक्य है, विकलादेश नय वाक्य है, ऐसा आग्रह करनेमे न तो प्रमाण सप्तभङ्गी बनेगा और नय सप्त भङ्गी बनेगा।

सप्तभङ्गोंमें ३ नय वाक्य व ४ प्रमाणवाक्य माननेमे सिद्धान्तसे विरोध—

ॐ

यहाँ कोई यह शङ्का करता है कि सप्तभङ्गी दोनोंमें नहीं बनती तो मत बनो। तीन नय वाक्य हो जायेंगे और ४ प्रमाण वाक्य हो जायेंगे। सो यह बात यों न, कह सकेंगे कि इस तरह कहनेमे अर्थात् पहिले, दूसरे, चौथे भङ्गोको नयवाक्य कहनेमे और ५ वें, ६ ठवें ७ वें भङ्गको प्रमाण वाक्य माननेसे स्याद्वादके सिद्धान्तका विरोध होगा, क्योंकि अपेक्षा यहाँ ७ हैं। पूर्ण बात तो वाक्योमे कही नही जा सकती। अपेक्षा भेद से दृष्टिकोणमें एक वस्तुमें पाये जाने वाले एक दो धर्मोंका याने विकल धर्मोंका वर्णन है इस कारणसे स्यादवादकी सम्पन्नता न केवल तीन वाक्योंसे बनेगी और न ४ वाक्यों से बनेगी। ७ भङ्ग ही स्याद्वादका रूप रखते हैं। तब प्रमाण सप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गीके सम्बन्धमें कुछ और खोज करना चाहिए।

धर्म धर्मी विषयके बोधक वाक्यसे सकलादेश व विकलादेशके स्वरूप वर्णन

की चर्चा—

कोई सतजन कहते हैं कि धर्मको विषय न करने वाले और धर्मी वस्तुको विषय करने वाले ज्ञानको उत्पन्न करने वाला वाक्य सकलादेश कहलाता है, और धर्मीको विषय न करने वाले धर्मको विषय करने वाले बोधको उत्पन्न करने वाला वाक्य विकलादेश कहलाता है यह कथन भी युक्त नही है, क्योंकि यदि किसी भी धर्मसे विशेषित न हो धर्मी तो उस धर्मीके सम्बन्धमे शब्दज्ञान भी नही बन सकता है और धर्मीमे वृत्ति पाये जानेरूपसे विशेषित न हो धर्म, तो उसका भी शब्द बोध हो नही सकता इसका तात्पर्य यह है कि कभी किसी धर्ममात्रके शब्दसे भी कथन किया जाय तो धर्म युक्त धर्मी ज्ञानमे होता ही है। तब जाकर धर्मका ज्ञान बनता है। इस प्रकार कभी धर्मी वाचक शब्दोंका प्रयोग किया जाय तो उस प्रयोगमे भी धर्मका परिज्ञान गर्भित ही है। धर्मसे अविशेषित धर्मीका बोधमे विषय न बनेगा अथवा धर्मीमे रहने वाले रूपसे अविशेषित यदि धर्मका ज्ञान किया जाय तो वह भी किसी भी ज्ञानका विषय नही बन सकता। अतः यह कहना सम्पन्न नही हो सकता कि धर्मीको विषय करने वाले ज्ञानको उत्पन्न करे ऐसा वाक्य सकलादेश कहलाता है, और धर्मका ही विषय करने वाले ज्ञानको उत्पन्न करे ऐसा वाक्य विकलादेश कहलाता है।

प्रसङ्गगत सकलादेश विकलादेशके उदाहरणपर विचार—

उक्त चर्चणीय सकलादेश विकलादेशके सम्बन्धमे यदि कोई कह कहे कि स्याद जीव एव कथञ्चित् जीव ही है, इस वाक्यसे केवल जीव धर्मी मात्रका ज्ञान उत्पन्न हुआ है, और जब यह कहा कि स्यादअस्ति एव कथचित है ही इस वाक्यसे केवल अस्तित्त्व धर्मका ज्ञान उत्पन्न हुआ। यो सकलादेश और विकलादेशके लक्षण युक्तिसगत रहे। जो समस्त धर्मोंका ज्ञान कराये वह सकलादेश, जो किसी धर्म मात्रका ज्ञान कराये वह विकलादेश। तो स्याद जीव एव इस वाक्यसे सकलादेशपना स्यादअस्तिएव इस वाक्यसे विकलादेशपना, यह बात भी नही कह सकते, क्योंकि जब भी जीव शब्द से बोला गया कि स्याद जीव एव तो इसमे भी जीवत्वरूप धर्मसे सहित ही जीवका कथन हुआ न कि धर्म शून्य पूर्वक किसी धर्मी मात्रका ज्ञान हुआ। जब भी जीव कहा कि स्याद् जीव एव तो इस कथनमे जीवत्व धर्म सहित ही जीव परखा गया। धर्मसे पृथक, धर्मसे रहित केवल धर्मी मात्रका परिग्रहण नही हुआ। इसी प्रकार जब स्याद अस्ति एव इस वाक्यसे कहा गया तो इस शब्दसे ऐसे अस्तित्व धर्मका कथन हुआ जो किसी धर्मीमे रहनेरूपसे विशेषित है अथवा किसीमे धर्मरूपमे रह रहा है, वह अस्तित्व इस वृत्तिरूप सम्बन्धसे युक्त अस्तित्त्व धर्मका कथन हुआ। कही न तो धर्मीसे रहित धर्मीमे वृत्तिरूपसे शून्य केवल धर्ममात्रका भान होता है और न धर्मसे रहित केवल

किसी धर्मीमात्रका ज्ञान होता है। और बतलावो कि धर्मीके सम्बन्ध बिना अन्वितपना बिना धर्मका अर्थ क्या ? जो विवेकी पुरुष हैं वे सब इस रहस्यको भली भांति जानते हैं। कदाचित् कोई यह कहे कि यदि धर्मी तथा धर्मका अलग-अलग भान नहीं होता, तो द्रव्यवाचक शब्द और भाववाचक शब्द इस विभागकी सिद्धि नहीं हो सकती याने धर्मी और धर्म ये जुदे जुदे हैं। धर्मीका भान पृथक है, धर्मका भान पृथक है तभी तो यह शब्द द्रव्यवाचक है यह शब्द भाववाचक है, ये व्याकरणोमें भेद चलेंगे मगर धर्मी और धर्मका पृथक भान न माना जाय तब फिर शब्दभेद भी क्या रहा कि यह द्रव्यका वाचक शब्द है और यह भाव शब्दका वाचक है, ये धर्मीके वाचक शब्द हैं और ये धर्मके, यह विभाग न बन सकेगा।

सकलादेश व विकल देशके उक्त लक्षणारेकाका-समाधान—

❀

उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि यह भी शङ्का नहीं डाली जा सकती, क्योंकि प्रधानतासे जो द्रव्यके वाचक हैं उनको कहते हैं द्रव्यशब्द और जो प्रधानतासे भावके या धर्मके वाचक हैं शब्द उनको कहते हैं भावशब्द। जैसे 'जीव' यह कहा गया तो यहाँ जीव शब्दमे जीव जो एक द्रव्य है उसकी प्रधानतासे कथन हुआ, किन्तु जीवस्वरूप धर्मका गौणतासे प्रतिपादन हो ही जाता है। इसी प्रकार जब कहा अस्ति तो इस शब्दकी मुख्यतासे अस्तित्त्व धर्मका वर्णन होता है लेकिन उसमे जीवादिक धर्मीका भी गौणतासे प्रतिपादन है। अस्तित्त्व ऐसा कहनेपर क्या पदार्थशून्य अस्तित्व बोला गया। क्या कहीं ऐसा भी अस्तित्त्व है कि जो किसी पदार्थसे विशेषित न हो, पदार्थमें न रहता हो, केवल सत्ता ही सत्ता है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, ऐसी कोई सत्ता नहीं है। हाँ, सत्ता शब्द जब कहा तो प्रधानतासे धर्मका वर्णन हुआ, पर धर्मी को छोड़कर धर्म रहे और उस धर्मका वर्णन हो सत्ता आदिक शब्दसे, ऐसा नहीं हो सकता। तो यों प्रधानतासे कथन होनेके कारण द्रव्यवाचक और भाववाचक शब्दोंका विभाग उत्पन्न होता है।

द्रव्यवाचक व भाववाचक शब्दका निरूपण व उसका समाधान—

❀

द्रव्यवाचक व भाववाचक शब्दके सम्बन्धमे कोई यह कहते हैं कि जैसे कहा गया अयं पाचकः यह रोटी पकाने वाला है। तो यहाँ जो पाचक शब्द बोला वह द्रव्य पाचक शब्द है, एक पुरुषका बोधक है और जब कहा—अस्य पाचकत्वं इसका पाचक पना तो इस शब्दमें भाववाचकता आई। यों द्रव्यवाचक और भाववाचक शब्दोंका विभाग बनता है। सो यह कथन भी युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि जब भी पाचक ऐसा कहा गया, तो पाचक ऐसा कहनेमे पाचकत्व धर्मसहित ही पुरुषका कथन हुआ। यह

बात सभी के अनुभवमे सिद्ध है कि जब भी पाचक बोला गया और समझा गया कि रसोई बनाने वाला, तो रसोई बनानेरूप धर्मकी बातका बोध तो है ही, तब तो समझा गया कि यह पाचक है। तो यह केवल द्रव्यका ग्राहक है इस कारण यह द्रव्यवाचक शब्द है, ऐसा कथन ठीक नही, किन्तु प्रधानतामे द्रव्यका वाचक शब्द है यह कथन ठीक है। इसी तरह जब भी कहा गया कि इनका पाचकपना तो इस शब्दसे केवल पाचकपना अलगसे समझा हो सो नही, किन्तु पाचक उसके मानमें है, और उसमें रहने वाला पाचकपना उसका यहाँ प्रधानतासे कथन हुआ। तो द्रव्यका प्रधानतासे कथन जो करे उसका नाम है द्रव्यवाचक शब्द और भावका प्रधानतामे कथन जो करे उसका नाम है भाववाचक शब्द। परन्तु कोई यह कहे कि कभी केवल धर्मीका ही ज्ञान किया जाता है, धर्मका भान जरा भी नही होता, तो बात न बनेगी। अथवा धर्मका ही भान होता है जिस धर्मीमे वह धर्म है, उस धर्मीका भान होता ही नही है, सो भी बात न बनेगी। इस तरह जब धर्मी और धर्म बिल्कुल अलग अलग सिद्ध नही होते तब यह कथन करना कि जो धर्मका विषय करनेवाले ज्ञानको उत्पन्न करे वह तो है विकलादेश और जो धर्मीको विषय करने वाले बोधको उत्पन्न करे ऐसा वाक्य है सकलादेश। यो सकलादेशको प्रमाणवाक्य कहना और ऐसे ही लक्षण वाले विकलादेशको नयवाक्य कहना सो युक्तिसङ्गत नही है।

प्रमाणसप्तभङ्गी व नयसप्तभङ्गी के आधारभूत विवादका उपसंहार—

सकलादेश व विकलादेशके लक्षणमे विवाद जानकर जिज्ञासा होती है कि फिर प्रमाणवाक्य क्या है और नयवाक्य क्या है ? इसका कथन आगे होगा। उस कथनको समझनेके लिए अन्य-अन्य प्रकारसे जो प्रमाण सप्तभङ्गी और नय सप्तभङ्गी का कथन किया जाता याने प्रमाणवाक्य और नयवाक्यका जो लक्षण किया जाता उसमे यह निरखना है कि इसमें क्या त्रुटि रह गई ? जिससे अब तक सकलादेश या विकलादेशका सही लक्षण नही बना। तो अब तक दो बातें रखी गई हैं—पहिला मत तो यह रखा गया था कि धर्मस्वरूप वस्तुके बोधको उत्पन्न करने वाला वाक्य सकलादेश है और सत्त्व असत्त्व आदिक धर्मोमेसे किसी एक धर्मका ज्ञान उत्पन्न कराने वाला वाक्य विकलादेश है। यह पहिली बात निराकृत कर दी गई थी। अब दूसरी बात कही जा रही है यह कि जो धर्मीका विषय न करके केवल धर्मका विषय करे, ऐसे वाक्यका नाम है विकलादेश और जो धर्मको विषय न करके केवल धर्मीका विषय करे उसका नाम है सकलादेश। सो ये दोनो ही प्रकारके अभिमत यहाँ युक्तिसङ्गत नही उतरते और न सकल देश और विकलादेशके लक्षणसे प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी बनती है। अब इसके सम्बन्धमे अन्य विद्वान लोग क्या कहते हैं ? इसका वर्णन करेंगे।

प्रत्येक पृथक वाक्यको विकलादेश व समुदित वाक्यको सकलादेश माननेकी चर्चापर विचार—

❀

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि स्याद अस्ति आदिक वाक्य सातो ही प्रकारके प्रतिपादन तो अलग-अलग विकलादेश कहलाते हैं और वे समस्त समुदित होकर सकलादेश कहलाते हैं। उनसे पूछा जाय कि यह बतलाओ कि किस कारणसे स्याद् अस्ति आदिक ७ प्रकारका वाक्य एक एक करके अलग अलग विकलादेश है ? तो वे ऐसा कहते कि एक-एक अलग-अलग वाक्य समस्त अर्थोंका प्रतिपादन करने वाला नहीं है, इस कारण विकलादेश है। जैसे ७ भङ्गोंमे एक स्याद अस्ति एव कहा, तो उसमे बाकी ६ भङ्गोके जो वाक्य हैं उनका तो बोध नहीं कराया। इसी प्रकार हर भङ्गमे यही बात है कि वे अपने ही वाच्यार्थका बोध करायेंगे अन्य ६ भङ्गोका नही इस कारण वह विकलादेश है। वे ऐसा भी नही कह सकते क्योंकि इस तरह माननेमे तो सातो वाक्य भी विकलादेश हो जायेंगे याने स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदिक सातो वाक्य मिलकर भी सम्पूर्ण अर्थोंके प्रतिपादक नही हो सकते, क्योंकि समस्त श्रुतज्ञान ही समस्त अर्थोंका प्रतिपादक होता है। और, इसी तरह जैसे कि विकलादेशके निराकरणमे बात कही गई है सकलादेशके निराकरणमे भी समझना कि सम्पूर्ण अर्थका प्रतिपादक तो मिलकर भी सप्तभङ्गीका वाक्य नहीं है, जो अभी अन्तिम शङ्कामे यह बात कही गई थी कि सातो ही प्रकारका वाक्य अलग अलग होकर तो विकलादेश है और समुदित हो करके सकलादेश है। सो यह स्वरूप नहीं बनता। समुदित होकर भी समस्त अर्थोंका प्रतिपादक हो जाय वह सप्तभङ्गी वाक्य, ऐसा निश्चय नहीं है, क्योंकि सत्त्व असत्त्व आदिकके सम्बन्धके जो ७ वाक्य कहे गए हैं उन सातो वाक्योंमे एक अनेक आदिक ७ वाक्यो द्वारा प्रतिपाद्य धर्मोंका वर्णन नही हो पाता। कोई एक धर्मी जैसे कथचित् सत् है, कथचित असत् है आदिक ७ धर्मोमे विस्तृत है इसी तरह वे कथञ्चित् एक हैं, कथञ्चित अनेक हैं, कथचित् नित्य हैं कथञ्चित् अनित्य हैं तो सभी बातें एक सप्तभङ्गीके समुदायसे ज्ञात नही होती। इससे सकलादेशका यह अर्थ युक्त नही हो पाता कि समस्त अर्थोंका प्रतिपादक होनेसे समुदित होकर सप्तभङ्गी वाक्योका समुदाय सकलादेश कहलाता है। इस प्रकार प्रमाण सप्तभङ्गी, नयसप्तभङ्गी, प्रमाण-वाक्य व नयवाक्यके सम्बन्धमे भिन्न भिन्न सन्तजनोके भिन्न भिन्न विचार हैं। उन सब विचारोका कुछ विचार करनेके बाद अब सिद्धान्तकी बात पर आये।

सकलादेशका स्वरूप—

❀

सिद्धान्तके जानकार लोग ऐसा कहते हैं कि एक धर्मके बोधनके द्वारसे अर्थात् वस्तुमें एक धर्मको समझाया जा रहा है इस माध्यमसे उस धर्मको आदि लेकर समस्त

जो धर्म है उन सब धर्मस्वरूप जो वस्तु है सो उस समस्त वस्तुके विषयमें बोधको उत्पन्न करने वाला जो वाक्य है उसे सकलादेश कहते हैं। याने वर्णन तो होगा एक धर्मके कथन द्वारा, पर एक धर्मके कथनके माध्यमसे जो उसका भी और अन्य सब धर्मोंका जो बोध करा देता है ऐसा जो वाक्य है उसका नाम सकलादेश है। अन्य आचार्यजन भी इसीके सम्बन्धमें अपने कुछ शब्दों द्वारा वर्णन करते हैं कि वस्तुके एक धर्मके द्वारा बाकी सब वस्तुवोंके स्वरूपका संग्रह करनेसे सकलादेश कहलाता है। इस मतव्यका विशेष अर्थ यह है कि जब अभिन्न वस्तु एक गुणरूपसे कहा जाता है तब अन्य शेष धर्मोंके बिना वस्तुका विशेष ज्ञान असम्भव है याने एक गुणरूपके कहे बिना अन्य धर्मोंका ज्ञान होना असम्भव है। वह एक धर्मद्वारा ही कहा जायगा। लेकिन उस एक धर्म द्वारा उस समग्र वस्तुका कथन हो तो वह सकलादेश कहलाता है। इसका कारण यह है कि कोई एक पदार्थ अस्तित्व आदिक सब धर्मोंमें एक धर्म स्वरूपसे या अभेद वृत्तिसे अथवा अभेदके विचारसे वे सब निरंश हैं। इस कारण समस्त रूपमें ही कथन किया जाना अभिष्ट है। कोई चाहे कि हम वस्तुको पूरा जान जायें, तो उसको उस समस्त वस्तुकी जानकारी करानेके लिए जो कुछ भी कहा जायगा वह वचन किसी एक विशेषताका वाचक है। संसारमें कोई शब्द ऐसा है ही नहीं किसी एक वस्तुके सम्बन्धमें कहने वाला कि उसकी एक विशेषताका सूचक न होकर समस्त वस्तुका सूचक हो। जैसे कहा घडा तो घडा शब्द यह बतलाता है कि जो घडा जाय उसे घडा कहते हैं। तो उस घडा वस्तुमें केवल एक यही विशेषता तो नहीं है कि वह घडा जाता है। उसमें अन्य भी तो धर्म हैं, लेकिन लोग घडा, ऐसा शब्द बोलकर उस समस्त वस्तुका ग्रहण करते हैं। तो जानकारीमें यह पद्धति बनी हुई है कि एक धर्मके माध्यमसे तो वर्णन किया जायगा और वहाँ समस्त वस्तुका ग्रहण हो जायगा। तो यों एक धर्मके कथनके माध्यमसे उस धर्म सहित अन्य समस्त धर्मात्मक वस्तु विषयक बोधको जो उत्पन्न करे ऐसे वाक्यको सकलादेश कहते हैं। एक भङ्गके द्वारा जो तत्त्व अथवा धर्म कहा गया है उससे यह विभाग बन गया कि इसके सिवाय जो अन्य धर्म हैं वे इसके प्रतियोगी धर्म हैं। मुकाबलेमें भिन्न भिन्न धर्म हैं। तो जब कभी एक भङ्गके द्वारा एक धर्मका कथन किया जाता है तो वहाँ उसका प्रतियोगी अन्य धर्म अविवक्षित है याने उस समय कहनेको इष्ट नहीं है और बोध हो जाता है सबका। तो यों अभेद-वृत्तिसे अथवा अभेद उपचारसे एक धर्मके कथनद्वारा उस धर्मसहित समस्त धर्मात्मक वस्तुका बोध हो जाता है और इस तरहका ज्ञान जो उत्पन्न कराये ऐसे वाक्यका नाम है सकलादेश।

द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानतामें अभेदवृत्ति व अभेदोपचारका स्पष्टीकरण—

यदि इस प्रसंगमें यह जिज्ञासा हो कि कैसे अभेद सम्बन्धसे अभेदवृत्तिसे किसी

अभिन्न धर्मोको जानते हैं और यहां अभेदका उपचार किस ढगसे किया गया है सो सुनो ! जब द्रव्यार्थिकनयका आश्रय करके कुछ कथन किया जाता है तो वहां द्रव्यत्व-रूपसे अभेद होनेके कारण अर्थात् द्रव्य तो अभेदरूप है, तो वहां अभेद सम्बन्धसे द्रव्य-त्वकी वृत्ति है क्योंकि द्रव्यके नातेसे द्रव्यत्व धर्मसे सब धर्मोका अभेद है। तो जब द्रव्यार्थिकनयका आश्रय करके कथन किया जाता है तो वहां अभेदवृत्ति स्वय आ जाती हैं, क्योंकि वह दृष्टि ही द्रव्यार्थिकनयकी है। द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि सामान्य होती है और वह दूसरोका पृथक्करण नहीं करती, किन्तु सबका समग्ररूप एक अभेदमे रहता है। तो यो तो हुई अभेद सम्बन्धसे अभेदवृत्ति। अब अभेदके उपचारकी बात सुनो ! जब पर्यायार्थिकतत्त्वोका जैसे कि घटपना, कपालपना याने मिट्टीके घट खपरियाँ आदिक, उन अनेक पर्यायोमे जितनी पर्यायें हैं उन पर्यायोमे अथवा जीव द्रव्यको समझना चाहे तो जीवमे देवपना, मनुष्यपना, इस तरहसे इन व्यञ्जन पर्यायोमे अथवा मिथ्यात्व हुआ, सम्यक्त्व हुआ आदिक धर्मोका आश्रय करनेसे अर्थात् इन पर्यायोका परिज्ञान करनेकी स्थितिमे इनमें सबमे परस्पर भेद है तो भी द्रव्यत्वरूप एकत्वके माननेसे अभेदका भी उपचार हो जाता है। हुई हैं एक जीवमे मिथ्यात्व सम्यक्त्व आदिक अनेक पर्यायें लेकिन उन सबका आधार स्रोत तो एक यह जीव द्रव्य है। तो पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे इस पर्यायात्मक रूपका भेद होनेपर भी अभेदका उपचार बनता है।

परिज्ञानाशयके आधारपर सकलादेश व विकलादेशका विभाग—

❀

अभेदवृत्ति और अभेद उपचारकी पद्धतिसे द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानता रखकर जो इन भगो द्वारा किसी एक धर्मके कथन द्वारा समस्त धर्मात्मक वस्तुका ग्रहण किया जाता है उसको सकलादेश कहते हैं। तथा अभेदवृत्ति एव अभेद उपचार इन दोनोंका आश्रय न करके एक धर्मात्मक वस्तुके विषयमे ज्ञानको उत्पन्न करने वाले जो वाक्य हैं उनको विकलादेशमें भीतरकी दृष्टिका फर्क है। अभेद पद्धतिसे उस एक धर्मके कथन द्वारा समस्त धर्मात्मक वस्तुका ग्रहण करना सकलादेश है और अभेद पद्धतिसे एक धर्मके कथन द्वारा एक धर्म विषयक ही ज्ञानको बताना सो विकलादेश है। तो यह ही सप्त भङ्गी अभेद पद्धतिसे सकलादेशको सूचित करती है और भेद पद्धतिसे विकलादेशको सूचित करती है।

प्रथम व द्वितीय भङ्गकी उपपत्ति—

❀

अब उन ७ भङ्गमे प्रत्येक भङ्गकी विधि पद्धति बतलाते हैं। ७ भङ्गोंमेसे अन्य धर्मोका निषेध न करके विधि विषयक बोध उत्पन्न कराने वाला वाक्य प्रथम भङ्ग है,

जैसे प्रकृतमे कहा गया है स्याद अस्ति एव घट. । यहाँ विधि की जाती है घटकी । घटका अस्तित्व कहा गया है । और इससे सम्बन्धित ६ भङ्ग और हैं जिनका विषय है नास्तित्व, अवक्तव्य, उभय आदिक, उनका निषेध नही किया । तो अन्य धर्मोंका निषेध न करके विधिको बताने वाला यह प्रथम भङ्ग है । इस भङ्गमे खास ध्यान देने योग्य दो बाते हैं - स्यात् और एव । स्यात्का अर्थ है अपेक्षासे और एवका अर्थ है अवधारण । घट है ही अपेक्षासे । तो अपेक्षा लगाकर ही का बोलना बहुत रहस्यको प्रकट करता है । सप्तभङ्गमे सशयका स्थान नही है, सशयका विरोधी है एव शब्द । जहाँ एव हो, अवधारण हो वहाँ सशयका अवकाश नही है । तो एव लगाकर सशयवादका निराकरण किया गया तथा स्यात् जो शब्द पहिलेसे लगाया गया उससे हठवादका निराकरण किया गया । अब द्वितीय भङ्गकी बात सुनो ! द्वितीय भङ्गमे जो कुछ तत्त्व बताया है उसके अतिरिक्त जो अन्य ६ भङ्ग हैं उनका निषेध न करते हुए प्रतिषेधके विषयका ज्ञान उत्पन्न करनेवाला वाक्य है दूसरा भङ्ग स्याद्नास्ति एव घट:

प्रथम भङ्गमे प्रयुक्त द्रव्यवाचक व गुणवाचक शब्दका निरूपण—

अब प्रथम भङ्गके सम्बन्धमे एक नवीन बातपर और ध्यान दीजिए ! प्रथम वाक्यमे जो घट कहा है वह तो है द्रव्यवाचक और अस्ति कहा है वह है गुणवाचक । द्रव्य है विशेष्य और अस्ति है विशेषण । यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे कि जहाँ गुण तो विशेष्य बन जाता है और द्रव्य विशेषण हो जाता है और द्रव्य भी विशेष्य रूपसे प्रयुक्त होता है । तब यह कहना यहाँ कि घट विशेष्य रूप है और अस्ति विशेषणरूप है, यह बात कैसे सम्भव हुई ? उत्तरमे कहते हैं कि कुछ हद तक आपकी बात यद्यपि सत्य है तो भी जो वाक्य समानाधिकरणरूप हैं उनमे तो यह नियम बन जाता ही है कि जो द्रव्यवाचक शब्द हो वह तो विशेष्य है और जो गुणवाचक हो वह विशेषण है । शङ्काकारके कथनका यह प्रयोजन था कि जैसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं घटका रूप फलकी मधुरता, फूलकी गध, जलका ठडापन, वायुका स्पर्श आदिक बातोमें देखो ! शङ्काकार बता रहा था कि यहाँ गुण भी विशेष्यरूपसे देखा गया है । जो प्रधानरूपसे कहा जाता हो वह विशेष्य होता है । जैसे कहा गया जलका ठढापन तो मुख्यता किसपर गई ? ठढेपनपर, और ठढापन है गुण, तो देखो यह विशेष्य बन गया । और कही-कही द्रव्य भी विशेषण बन जाता है । इसके समाधानमे थोड़ा इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि समान अधिकरण वाले वाक्यमे तो द्रव्य वाचकको ही विशेष्य कहा जाता है और गुणवाचकको ही विशेषण कहा जाता है । समानाधिकरण वाक्यका अर्थ यह है कि अवच्छेदक धर्म और वस्तुका गुण दोनो एक अधिकरणमे हैं ऐसे बोधका जनक वाक्य जैसे कहा नील कमल । तो अब यहाँ अवच्छेदक धर्म है नील, नील कमल न कि अन्य पीला आदिक ।

तो जो शब्द अन्यका निराकरण करे उसे कहते हैं अवच्छेदक। व्यवहारके प्रयोगमें भी शब्द अवच्छेदक बहुत बोले जाते हैं। जैसे किसी एक का नाम लेकर बोलना, तो इसमे अवच्छेदकता स्पष्ट है कि यह ही आया, अन्य कोई नही। तो अन्यके निराकरणकी बात स्पष्ट न कहनेपर भी शब्दमे यह सामर्थ्य है कि वह अन्यका अवच्छेदक बन जाय। तो जैसे कहा गया नीलकमल, तो नील हुआ अवच्छेदक और कमल हुआ द्रव्य। तो द्रव्य वाचक कमल शब्द मे तो है विशेष्यपन और नील इस शब्दमें है विशेषणपन। इस न्यायसे द्रव्य वाचक शब्द प्राय विशेष्य होता है और गुणवाचक शब्द विशेषण होता है।

प्रथम भङ्गमे अवच्छेदकता व अवधारणका प्रकाश—

अब परखिये! प्रथम भङ्गमे अवच्छेदकताकी बात। जैसे, स्वकीय स्वरूपसे अस्तित्वका भङ्ग किया गया है, कहीं इसी प्रकार स्वकीयरूपसे नास्तित्वका भी भान मत हो जाय, इस प्रयोजनके लिए अनिष्ट अर्थके निराकरणके लिए एव शब्द लगाया गया है। स्याद अस्ति एव घट, अपने स्वरूपसे है ही। ही के लगाये बिना कही यह बात न बन जाय कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे भी है। तो अयोगीका व्यवच्छेद करनेके लिए इससे एव शब्द दिया गया है। तब प्रथम भङ्गमे स्याद् अस्ति एव, इस शब्दके कहनेसे यह अर्थ ध्वनित होता है कि निज स्वरूपमे घट का अस्तित्व 'ही' है न कि नास्तित्व। अर्थात् अपने स्वरूपसे है ही है, उसके निजरूपका असत्व नेही है। इसी सम्बन्धमें अन्य आचार्य जनोंने भी कहा है कि वाक्यमे जो अवधारण शब्द दिया गया है यह अनिष्ट अर्थकी निवृत्तिके लिए दिया गया है। यदि अवधारण करने वाला शब्द न दिया जाव तो न कहे हुएके समान कदाचित कहीं उसके प्रतियोगीकी प्रतीति हो जायगी। अर्थात् एव शब्दके न कहनेपर स्वरूपसे नास्तित्वका भी बोध हो जायगा। अत भङ्गमें वाच्यके अवधारण रूप एव शब्दका प्रयोग करना उचित है।

शङ्काकार द्वारा एव शब्दकी व्यर्थताका निरूपण—

शङ्काकार कहता है कि देखिये! नाना पदार्थ वाचक शब्दोमे दीख जाते हैं कि कही एव शब्द लगानेपर भी अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति नहीं होती। और कही एव एव शब्द न लगानेपर भी अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति हो जाती है। जैसे कहा—गौ एव, केवल गौ। यहाँ निश्चयवाचक एव शब्द साथ मे जुड़ा हुआ है फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नहीं हो रही। सो कैसे? उसे यों देखिये कि गौ शब्द के अनेक अर्थ हैं। गौ शब्द—इन्द्रिय, किरण, सूर्य आदि अनेक अर्थोंको वाचक है। तो गौ एव यहाँ एव अवधारण वाचक शब्द रहने पर ही गौ शब्द द्वारा वाच्य जितने अर्थ हैं सभी अर्थों

की उपस्थिति हो जायगी। और प्रयोजन था यहाँ गाय पशु से लेकिन शब्द में तो अर्थ भरे हैं अनेक, तो गौ ही यों यहाँ ही लगाकर केवल गाय पशु आया, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गौ शब्दके अनेक अर्थ हैं। किरण, सूर्य आदिक भी अर्थ लिए जा सकते हैं। तो देख लीजिए कि अवधारण वाला एव शब्द लगा है इसमें, लेकिन गौ, एव कहनेमें केवल गाय पशुका ही अवधारण बने सो बात नहीं। तो यहाँ यह देख लिया ना कि अवधारण वाचक एव शब्द लगानेपर भी यहाँपर अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति नहीं हो सकती। अब दूसरा स्थल सुनो। जहाँ एव शब्दका प्रयोग भी न हो फिर भी अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति हो जाती है। जैसे कहा गया "गा आ नय" गायको लावो, तो यहाँ एव शब्द कुछ नहीं लगाया गया, फिर भी प्रकरणवश केवल गायका ही बोध हुआ। गायको ही लायगा सुनने वाला, अनिष्ट अर्थको न लायगा। तो अब यह निश्चय न रहा कि जहाँ एव शब्द लगा हो वहाँ अवधारण रहता है। गा आनय ऐसा कहनेपर भी कि वहाँ दूध लानेका प्रयोजन था उसके लिए पशु बोलनेकी बात कही जा रही है। तो उस समय गो लावो इस शब्दमें पशुका ही अवधारण हुआ, अन्यका नहीं। इसमें सिद्ध है कि अवधारण शब्दके प्रयोगसे अन्यकी निवृत्ति हो जाय अथवा न हो, यहाँ कुछ नियम नहीं है। एव शब्द लगा हो, फिर भी अनिष्ट निवृत्ति न हो और "एव" न भी लगा हो फिर भी अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति हो जाय। इस हेतुसे, अन्वयव्यतिरेक सही न रहनेसे निश्चयवाचक एव शब्दसे अन्यकी निवृत्तिमें कारणपना नहीं आया अर्थात् एव लगानेसे अन्य बातोंका निराकरण हो जाय यह बात नहीं आ सकती है। और भी देखिये! एव शब्द लगानेमें दोष, अन्यकी निवृत्ति करता हुआ जो एव शब्द है वह शब्द है वह एव शब्द अन्य एव शब्द भी अपेक्षा रखता है या नहीं? अर्थात् एव शब्दका जो अर्थ है उसका भी अवधारण बन जाय और अन्यकी निवृत्ति हो जाय इसीलिए अन्य एव शब्दकी अपेक्षा होती है क्या? यदि कहो कि हाँ अन्य एव शब्दकी अपेक्षा होती है तब तो अनवस्थादोष आयगा। जैसे अस्तित्वको पुष्ट करनेके लिए एव शब्द लगाया गया है तो एव शब्दके अर्थको पुष्ट करनेके लिए और एव लगाना चाहिए। यों अनवस्था दोष होगा और यदि कहो कि एव शब्द दूसरे एवकी अपेक्षा नहीं रखता है, तो जैसे "एव" के अर्थका ज्ञान करानेमें जैसे अन्य एवके प्रयोग बिना भी एवका अवधारण हो जाता है इसी तरह एवके प्रयोग बिना ही पदार्थ का अवधारण हो जाना चाहिए। तो यों सब शब्दोंके प्रयोगमें भी एवके कहे बिना ही प्रकरण आदिकसे अन्यकी निवृत्ति बराबर बन जायगी। तब स्याद अस्ति एव इस प्रकारके प्रथम भङ्गमें एव शब्दको जोड़ना बिल्कुल व्यर्थ है। शङ्काकार इस समय प्रथम भङ्ग स्याद अस्ति एव इसमें स्याद अस्ति, इन दोपर आपत्ति न देकर यहाँ एव शब्द पर आपत्ति दे रहे हैं कि एव कहनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि इसमें अवधारण का अन्वय व्यतिरेक नहीं है। याने एव कहनेपर भी अन्यकी निवृत्ति निश्चित नहीं है और एव न कहने पर भी अन्यकी निवृत्ति है। साथ ही एव मगर दूसरे "एव" को

चाहेगा तो अनवस्था बनेगी। और न चाहेगा तो पहिले ही एवकी कोई आवश्यकता नही है। इस प्रकार प्रथम भङ्गमे एव शब्दका देना व्यर्थ है। यो शङ्काकार ने शङ्का की।

"एव" शब्दकी अव्यथता व आवश्यकताका निरूपण—

❀

एव शब्दसे अवधारण सिद्ध नहीं होता है ऐसी आशङ्काके समाधानमे कहते हैं कि ऐसी शङ्का नहीं कर सकते, क्योंकि फिर तो शब्द शास्त्रकी परिपाटी विरुद्ध पड जायेगी। शब्द शास्त्रमे यह बताया गया है कि जो शब्द अपने अर्थ मात्रमे जो कि अनवधारित है याने निश्चयरूपसे कहा गया नही है ऐसे अपने अर्थमात्रमे जो शब्द संकेतित हुए हैं याने जो शब्द कहे गए हैं वे शब्द अपने स्वरूपके अवधारणकी विवक्षा मे अर्थात् ये ऐसे ही हैं यो निश्चयकी विवक्षामे एव शब्दकी अपेक्षा रखते हैं जैसे कि शब्दोंके समुच्चय आदिककी विवक्षा वे च शब्दकी रखते हैं। जैसे यह कहा-घटका ही लावो तो यहाँ जब तक 'ही' शब्द नही बोलते तो यह अर्थ रहता कि घटको लावो। एक सामान्य कथन था। सम्भव है कि घटके ही समान और कोई पदार्थ थोडा सा उस प्रकृत प्रयोजनको बनाता होता तो उसको भी ला सकता था। जैसे कहा कि एक कटोरा लावो और न मिले कटोरा उस समय तो गिलास को भी ला सकता है क्योंकि जो प्रयोजन कटोरासे बनता है थोडा–थोडा कार्य गिलाससे चल जायगा, लेकिन जब यह कहा जाय कि एक कटोरा ही लावो तो गिलास वगैरह कुछ नही लाये जायेंगे। तो 'ही' शब्द एक अवधारणको सिद्ध करता है। जैसे कि 'च' शब्द समुच्चयको जताता है। जैसे किसीने कहा—कटोरा लावो और गिलास लावो तो जो और शब्द लग गया जो कि 'च' का अर्थ है तो उससे समुच्चय अर्थ आ गया। तो यह एव शब्द अवधारणको सूचित करता ही है। तो जो शब्द अवधारणका अर्थ नहीं रखता, अपने ही वाच्य अर्थको रखते हैं उन शब्दोंके आगे निश्चयकी विवक्षा होनेपर एव शब्द लगाया जाता है। लेकिन एव शब्द तो खुद अवधारणके रूपमे रखा गया। एवका अर्थ ही निश्चय होता है तो अब उससे और निश्चयके लिए अन्य एव शब्दकी अपेक्षा न रहेगी। जैसे च का समुच्चय समझनेके लिये दूसरे च की अपेक्षा न रहती। जैसे बोला कि कटोरा लावो! और और और गिलास लावो! तो ऐसे अनेक और बोलनेका क्या प्रयोजन है? एक और से ही समुच्चयका अर्थ ध्वनित होता है। अब उसके समुच्चय बनानेकी आवश्यकता नहीं है। इसी तरह कटोरा ही लावो! कटोरा अर्थके अवधारणके लिए एक बार 'ही' बोल दिया अब और 'ही' के अवधारणकी आवश्यकता है जिससे और 'ही' लगानेकी जरूरत पडे। यो भङ्गोंमें जो एव शब्द लगा हुआ है—स्याद् अस्ति एव स्याद् नास्ति एव वह एव शब्द सार्थक है और उसके अवधारणके लिए और शब्दकी आवश्यकता नहीं रहती।

एव शब्दकी व्यर्थताकी शङ्का व उसका समाधान—

❀

अब यहाँ कोई संदेह रख रहा है कि भाई ! जो निपात शब्द होता है वह तो द्योतक ही होता है। अर्थात् निपात शब्दका जिस शब्दके साथ जुड़ाव रहता है वह निपात शब्द जिसमें जुड़ा है उस शब्दके अर्थको ही प्रकाशित करता है। उसीके मायने है द्योतक होना। तो निपात द्योतक होता है, इस कारण उसमें एव शब्दकी वाचकता सम्भव नहीं है अर्थात् एव शब्द द्योतक है वाचक नहीं है। इस कारण एव शब्दका प्रयोग व्यर्थ ही है, वह तो किसी अर्थका वाचक ही नहीं है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि निपात शब्द द्योतक भी होता और वाचक भी, ऐसा शब्द शास्त्रमें बताया हुआ गया है कि 'द्योतकाश्च भवन्ति निपाता' निपात द्योतक भी होते हैं। तो वहाँ जो 'च' शब्दका प्रयोग किया है और कहा है कि 'और द्योतक भी होते हैं निपात' तो इस 'च' शब्दमें निपातोंकी वाचकता भी बताई गई है। निपात शब्द वाचक भी होते हैं, यह अर्थ अपने आप ध्वनित हो जाता है।

द्योतक शब्दके लिए अन्य द्योतक शब्दकी अनपेक्षाका कथन—

❀

कुछ संत जन तो स्पष्ट ऐसा कहते हैं कि जो निपात शब्द होते हैं वे द्योतक हुआ करते हैं और द्योतक होनेके नातेसे द्योतक शब्दके लिए अन्य द्योतक शब्दकी अपेक्षा नहीं रहती। इस कारण अवधारणका द्योतन करनेके लिये अन्य एवकारकी अपेक्षा न रहेगी। तो एव शब्दके निश्चयके लिए अन्य एव शब्दकी अपेक्षा नहीं रहती। निपात शब्द वह कहलाता है कि जिसका कुछ वाच्य नहीं, किन्तु किसी शब्दके अर्थको ही ध्वनित करनेके लिये शब्द बनाया गया है। जैसे हिन्दीमें और ही भी इन शब्दोंका निजी अर्थ कुछ नहीं है। और ये शब्द कभी स्वतंत्र प्रयोगमें आते नहीं किन्हीं शब्दोंके साथ ही इन निपात शब्दोंका प्रयोग होता है उनके वाच्यमें कुछ विशेषता जताते हैं ये निपात, इनका भिन्न अर्थ कुछ नहीं है। तो उन्हीं निपात शब्दोंमें एव शब्द है। जैसे हिन्दीमें 'ही' होता है, यह अवधारणके लिए आता है। तो चूंकि यह एव अथवा ही शब्द स्वयं अवधारण द्योतक हैं, इस कारण इनका और अवधारण करनेके लिए अन्य एव शब्दकी अपेक्षा नहीं। जैसे कि दीपक द्योतक पदार्थ है प्रकाश करने वाली वस्तु है। अब दीपकके निश्चय करनेके लिए अन्य दीपककी अपेक्षा नहीं रहती। जैसे घट पट आदिक पदार्थोंको ढूंढनेके लिए दीपककी अपेक्षा की जाती है इस तरह दीपकको ढूंढनेके लिए अन्य दीपककी अपेक्षा नहीं रहती। तो जैसे घट आदिक पद वाच्य शब्द हैं तो इन वाचक शब्दोंके अवधारण करनेके लिए एव शब्दकी अपेक्षा हुई घट ही है। यहाँ तो ही लग गया, पर हीके और निश्चय करनेके लिये अन्य ही की अपेक्षा न होगी।

द्योतक शब्दमें भी अन्य द्योतक शब्द जुड़नेकी एक शंका व उसका समाधान—

निपातोंसे केवल द्योतक कहकर प्रकृत समाधानमें सहयोग देनेके प्रयत्न करने वाले इस चर्चाकारके प्रति कोई शङ्काकार कहता है कि भाई देखिये ! द्योतक भी शब्द हो तो भी उसको अन्य द्योतक शब्दकी अपेक्षा देखी जाती है। जैसे एक प्रयोग किया गया—ऐसा ही है। अब यहाँ देखिये ! 'ऐसा' यह शब्द भी द्योतक है निपात है और उस द्योतक शब्दके अवधारणके लिए इसमें 'ही' फिर बैठाया गया है। ऐसा ही है। यह अयुक्त प्रयोग तो नहीं है, और हैं दोनों द्योतक शब्द। "ऐसा" यह शब्द भी द्योतक है और "ही" भी द्योतक। तो द्योतक शब्दके लिए भी अन्य द्योतक शब्दकी अपेक्षा देखी जाती है। जैसे कि एव एव, इसमें एवके साथ एवशब्दकी अपेक्षा हुई इसी प्रकार समस्त द्योतक शब्द द्योत्य अर्थमें, जिस अर्थका प्रकाश करना है उस अर्थमें अन्य द्योतककी अपेक्षा रहेगी। और, इस तरह फिर तो अनवस्था हो जायगी। वह किसी प्रकार हटायी न जा सकेगी। इस शंकाकारके प्रति चर्चाकार समाधान करता है कि यह कथन करना युक्त नहीं है। क्योंकि यहाँ जो उदाहरण दिया है एव एव' ऐसा ही है, इस उदाहरणमें जो एव शब्द है उसका खुदका निजी अर्थ है, वह स्वार्थ वाचक होनेके कारण स्व अर्थसे अतिरिक्त अन्य अर्थकी निवृत्तिके लिए द्योतक एव शब्दकी अपेक्षा हुई। निपात शब्द वाचक भी हुआ करता है, यह बात शास्त्र सम्मत है। तात्पर्य यह है कि जिन शब्दोंका अपना अर्थ होता है उनके अवधारणके लिए एव शब्दका प्रयोग होता है लेकिन एवके अवधारणकी न कोई अपेक्षा रहती है और न अन्य एव शब्दकी वहाँ आवश्यकता होती है। निपात शब्द कई निपात शब्द केवल द्योतक होते हैं। यहाँ एव अर्थात् ऐसा, यह शब्द वाचक भी है द्योतक भी है। निपात शब्द वाचक भी होता है, इसमें संदेह न करना चाहिए। देखिये ! समास जो हुआ करते हैं वे वाचक शब्दोंमें ही हुआ करते हैं। निपात के साथ ही अगर कहीं समास होता है तो समझना चाहिए कि यह वाचक है और इस अर्थको ध्यानमें रखकर यहाँ समास किया गया है। जैसे उपकुम्भम्—यह समास वाला शब्द है, इसका अर्थ है— कुम्भके समीप। तो यहाँ उपशब्द है, इसका अर्थ है कुम्भके समीप। तो यहाँ उपशब्द है तो निपात शब्द, लेकिन इसका अपना अर्थ है। यहाँ समीप अर्थमें उप का प्रयोग है तभी उप शब्दके साथ कुम्भ शब्दका समास संगत हुआ है अन्यथा अर्थात् यदि इस निपात शब्दका स्व अर्थ न होता, केवल द्योतक ही कहलाता। तो इस शब्दके साथ समास न हो सकता था, क्योंकि द्योतक शब्दके साथ समास नहीं किया जाता। जो शब्द अपने खुदका अर्थ रखते हैं उन शब्दोंके साथ ही समास किया जाता है। तो चर्चाकारके प्रति शङ्काकारकी शङ्का अयुक्त है। निपात शब्दोंमें जो शब्द वाचक भी हैं उनके साथ अन्य द्योतक शब्द लगा दिये जाते हैं, किन्तु जो शब्द केवल द्योतक ही है, जिनका अपना कुछ अलग अर्थ नहीं है उनके साथ अन्य द्योतक शब्दकी अपेक्षा

नही रहती ।

अन्यव्यावृत्तिवादमे 'एव' शब्दकी व्यर्थताकी आशङ्का व उसका समाधान—

❀

यहाँपर क्षणिकवादी सौगत कहते हैं कि जितने भी शब्द हैं वे सभी शब्द अन्य व्यावृत्तिके वाचक हैं। जैसे कि घट कहा तो घटका अर्थ सीधा विधिरूप 'घडा' नहीं है, किन्तु घटको छोडकर बाकी अन्य पदार्थ नही हैं, यह घटका अर्थ होता है। तो सभी शब्द जब अन्य व्यावृत्तिके वाचक हैं और इसी कारण घट आदिक पदोंसे भी अन्यकी व्यावृत्तिका बोध होता है। तब यहाँ अनिष्टरूप अर्थकी निवृत्तिके लिए अवधारण वाचक एव शब्द देना युक्त नही है। शङ्काकारका यहाँ यह अभिप्राय है कि जब कोई शब्द अपना निजी अर्थ नही रखता, किन्तु उसका अर्थ अन्य व्यावृत्ति है तब फिर अवधारण वाचक एव शब्द देनेकी बात युक्त नहीं है। इसके समाधानमे कहते हैं कि सौगतका यह सिद्धान्त युक्तिपूर्वक नहीं है क्योंकि घट आदिक शब्दोंसे दोनो ही बोध हुआ करते हैं। अन्य की निवृत्ति भी ज्ञात होती है और विधिरूपसे घट अर्थ भी ज्ञानमें आता है, ऐसा सभीको अनुभव सिद्ध है। जैसे किसीने कहा—घडा, तो इस शब्दसे दोनो ही बाते बोधमें आती हैं कि यह घडा है और घडेके अतिरिक्त अन्य पदार्थ यह नही है। यदि ऐसा न मानोगे कि घट आदिक शब्दोंमे विधिरूप अर्थका बोध हुआ करता है तो अन्य व्यावृत्ति शब्द विधिरूपसे अन्यकी निवृत्तिरूप अर्थका ज्ञान कैसे करा सकता है? जैसे पूछा जाय कि अन्य व्यावृत्तिका मतलब क्या है? तो उसकी भी तो विधि बतानी पडेगी और विधि तुम अर्थमे मानते नही तो विधि अर्थ माने बिना अन्य व्यावृत्ति शब्दका भी अर्थ नही बन सकता। यदि सुगत ऐसा कहें कि अन्य व्यावृत्ति शब्द भी अन्य व्यावृत्तिसे भिन्न अन्यकी व्यावृत्तिरूपसे अन्य व्यावृत्ति रूप अर्थका बोध कराता है जैसे कि घट कहनेसे अघटव्यावृत्ति रूपसे अन्य व्यावृत्ति समझमे आती है इसी प्रकार अन्य व्यावृत्ति शब्दसे इससे भिन्न जो अन्य हैं उनकी व्यावृत्तिका अर्थ बन जायगा। तो यह कहना संगत नहीं है क्योकि यदि उस व्यावृत्ति से भिन्न अन्य व्यावृत्तिरूपसे बोध कराये तो फिर वह तीसरी अन्य व्यावृत्तिसे अन्य व्यावृत्तिका बोध होगा और तीसरी अन्य व्यावृत्तिका बोध चौथी अन्य व्यावृत्तिसे होगा। तो यो इसमें अनवस्था दोष आयगा, क्योकि विधि न माननेसे अन्यकी व्यावृत्तिकी धारा कभी समाप्त ही न होगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि वाक्यमे अनिष्ट की निवृत्तिके लिये अवधारणसूचक एव शब्द कहना युक्त ही है। तब स्यादस्ति एव घट इसका निश्चयात्मक अर्थ यह हुआ कि घट अपने स्वरूपसे है ही। स्यादनास्ति घट. इसका अवधारणपरक अर्थ यह हुआ कि घट पररूपसे नही है ही, इस तरह प्रत्येक भङ्गोमे एव शब्द अपनी अपेक्षाको लेकर अवधारण ही कराता है।

एव शब्दकी अयोगव्यवच्छेद बोधकता—

अब एवकारके अर्थ और प्रकारके विषयमें सुनो। एव शब्द तीन प्रकारका होता है। एव शब्दसे निश्चय ही तो किया जाता है। उसमे तीन पद्धतियाँ होती हैं। और उस पद्धतिसे एव तीन प्रकारका होता है—एक अयोगव्यवच्छेद बोधक दूसरा अन्य योग-व्यवच्छेद बोधक तीसरा अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक। इसका सामान्यतया अर्थ यह है कि जिसका योग जुडाव सम्बन्ध नहीं है उसका निराकरण कर देता है 'ही' शब्द। जैसे किसीने कहा कि शख सफेद ही होता है तो इस 'ही' लगा है सफेदके साथ। सफेद है विशेषण और शख है विशेष्य। तो उस शखमे यह निश्चय किया गया है कि सफेद ही है। तो इस 'ही' ने अन्य किन बातोंको हटा दिया ? काला, पीला, नीला आदिक अन्य विशेषणोका व्यवच्छेद कर दिया। तो जो विशेषणमे लगा हुआ एवकार हो वह अयोगका व्यवच्छेद करता है। जैसे कोई कहे कि यह पुरुष मोटा ही है तो अर्थ हुआ कि पतला आदिक नही है। तो जिन विशेषणोंका योग नही हो सकता उस विशेष्यमे उन सब विशेषणोको हटादे उसे अयोग व्यवच्छेदक कहते हैं। तो एव शब्दमे अयोग व्यवच्छेदकपनेकी कला पडी हुई है। अयोगव्यवच्छेदमे होता क्या है ? कि जिस उद्देश्यसे सहित अधिकरण है उसमे जिसका अभाव बताना है उस अभावकी अप्रतियोगिताको अयोगव्यवच्छेद कहते हैं। जिस वस्तुका अभाव कहा जाता है यह वस्तु उस अभावका प्रतियोगी है। प्रतियोगीका अर्थ समझिये शत्रु। जैसे घटका अभाव कहा तो घटके अभावका प्रतियोगी है घट। घट है तो उसका अभाव नही। अभाव है तो वहा घट नही। जिस वस्तुका अभाव बताना है उस अभावका प्रतियोगी वह वस्तु होती है। यहाँ जो उदाहरण दिया गया है वहा वस्तु बतायी जा रही है शख। उसमे धर्म है शखपना। तो शखपना धर्मसे सहित जो शख है उसके साथ ही साथ सफेदी रूप धर्मकी विधि बतायी जा रही है। तो शखपनेका अधिकरण है शख। और इसी शखमे समान अधिकरणरूपमे रह रहा है सफेदीपन। तो उसमे नीलपीत आदिकपनका अभाव है। इस अभावका प्रतियोगी शख हुआ। और सफेदीका अभाव है नही, तो सफेदीके अभावका शख अप्रतियोगी हुआ। मायने सफेदीपन और शखका तो सम्बन्ध है, शत्रुता नहीं है और जिन-जिन धर्मोका अभाव बतलाया जा रहा है उन-उन धर्मोंकी शत्रुता है। इस रीतिसे शखपन जैसे शखमे रह रहा है ऐसे ही सफेदपन भी शखमे ही रह रहा है कोई कहे कि शख सफेद ही है तो उसका अर्थ हुआ कि शखमे जिन-जिन धर्मोका योग नही है, जिन-जिन धर्मोका अभाव है उन धर्मोका व्यवच्छेद करता है 'ही' शब्द। शख सफेद ही है, काला, पीला, नीला आदिक नही। वह अन्य समस्त विशेषणोका परिहार कर देता है तो देखो यहा एव शब्द लगानेसे अयोग व्यवच्छेद हुआ तो अयोग व्यवच्छेद बोधक एवकार वह कहलाता है जो विशेषणके साथ लगा हुआ हो।

अस्तित्वके साथ एव शब्दके योजित रहनेपर भी उसके अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थका वर्णन—

❀

स्याद्अस्तिएवघट आदिक वाक्योमे अयोगव्यवच्छेदबोधकताकी बात घटा लीजिए ! घटत्वका अधिकरण है घट, घटके समानाधिकरणमे अत्यन्ताभावका प्रतियोगीपन जो एवकारका अर्थ है वह अस् धातुके अस्तित्वरूप अर्थमे याने अस्तित्वमे अन्वित है सो वहा घटत्वका समानाधिकरण रूप अत्यन्ताभावका प्रतियोगी अस्तित्ववान घट है यह परिचय हुआ। याने अत्यन्ताभावका व्यवच्छेद भी अर्थ लिया जाय तो उससे भी अयोगव्यवच्छेदका अर्थ होता है। है ही अर्थात् घटमे स्वरूपके अभावका अभाव है इससे भी सिद्ध हुआ कि प्रथम भगमे स्वरूपका अस्तित्व बताया गया है। घटत्वका समानाधिकरणरूप जो अत्यन्ताभाव है। जिस किसीका भी, अघटका अत्यन्ताभाव है तो अघटका ही तो अत्यन्ताभाव है, किन्तु अस्तित्वका तो अत्यन्ताभाव न रहा। तो अत्यन्ताभावका व्यवच्छेद भी घटित हो जाता है और निष्कर्षरूप मे अयोगव्यवच्छेद अर्थ होता है। घट अपने स्वरूपसे है पररूपसे अत्यन्ताभाव है। तो इस प्रकार चाहे क्रियासगत एवकी पद्धतिसे लगावो चाहे विशेषण सगत एवकार की पद्धतिमे लगाओ, अर्थ यह होगा कि घट अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नही है। पररूपका व्यवच्छेद कर देने वाला यह प्रथम भग है।

एवकारका अन्यनिवृत्तिरूप उद्देश्य—

❀

यहाँ शकाकार कहता है कि क्रियासगत एवकारका अर्थ प्रयोग व्यवच्छेद रूप जो बताया गया है अर्थात् यह बताया गया है कि घटमे जो कि घटत्वका अधिकरण है उसमे ही अत्यन्ताभाव है सो उस अत्यन्ताभावका व्यवच्छेदका सूचक एवकारका अर्थ अयोगव्यवच्छेद लगाया है सो इसमे अस्तित्वका अत्यन्ताभाव भी तो बन सकता है, क्योकि अस्तित्वके अत्यन्ताभावरूप नास्तित्वका घटमे सत्त्व है। जैसे कि घटमे अस्तित्व है इसी प्रकार घटमे नास्तित्व भी है और ऐसे अभावका अस्तित्व अप्रतियोगी रहे इसमे बाधा आ जाती है। तो यो जैसे कि उस वाक्यका अर्थ लगाया है क्रियासगत एवकारका भी जो अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थ लगाया है सो उससे तो नास्तित्वका घटमे निषेध प्राप्त होता है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि देखिये— यहा एवकारका जो अर्थ है वह प्रतियोगीके व्यधिकरणके अभावका अप्रतियोगी होना माना गया है। अर्थात् जैसे अधिकरणमे प्रतियोगी है उसीमे उसका अभाव भी हो ऐसा नही, किन्तु प्रतियोगीके अधिकरणमे न रहने वाला जो अभाव है उस अभावका अप्रतियोगी है याने घटमे पटका अभाव ही सिद्ध हो सकेगा। घटमे घटका नास्तित्व सिद्ध न होगा। क्योकि उस हीके धर्मको बताया जा रहा तो घटमे घटका

अस्तित्वके साथ एव शब्दके योजित रहनेपर भी उसके अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थका वर्णन—

❀

स्याद्‌अस्तिएवघट आदिक वाक्योमे अयोगव्यवच्छेदबोधकताकी बात घटा लीजिए ! घटत्वका अधिकरण है घट, घटके समानाधिकरणमे अत्यन्ताभावका प्रतियोगीपन जो एवकारका अर्थ है वह अस् धातुके अस्तित्वरूप अर्थमे याने अस्तित्वमे अन्वित है सो वहा घटत्वका समानाधिकरण रूप अत्यन्ताभावका प्रतियोगी अस्तित्ववान घट है यह परिचय हुआ। याने अत्यन्ताभावका व्यवच्छेद भी अर्थ लिया जाय तो उससे भी अयोगव्यवच्छेदका अर्थ होता है। है ही अर्थात् घटमे स्वरूपके अभावका अभाव है इससे भी सिद्ध हुआ कि प्रथम भगमे स्वरूपका अस्तित्व बताया गया है। घटत्वका समानाधिकरणरूप जो अत्यन्ताभाव है। जिस किसीका भी, अघटका अत्यन्ताभाव है तो अघटका ही तो अत्यन्ताभाव है, किन्तु अस्तित्वका तो अत्यन्ताभाव न रहा। तो अत्यन्ताभावका व्यवच्छेद भी घटित हो जाता है और निष्कर्षरूप मे अयोगव्यवच्छेद अर्थ होता है। घट अपने स्वरूपसे है पररस्वरूपसे अत्यन्ताभाव है। तो इस प्रकार चाहे क्रियासगत एवकी पद्धतिसे लगावो चाहे विशेषण सगत एवकार की पद्धतिसे लगाओ, अर्थ यह होगा कि घह अहने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नही है। पररूपका व्यवच्छेद कर देने वाला यह प्रथम भग है।

एवकारका अन्यनिवृत्तिरूप उद्देश्य—

❀

यहाँ शकाकार कहता है कि क्रियासगत एवकारका अर्थ प्रयोग व्यवच्छेद रूप जो बताया गया है अर्थात् यह बताया गया है कि घटमे जो कि घटत्वका अधिकरण है उसमे ही अत्यन्ताभाव है सो उस अत्यन्ताभावका व्यवच्छेदका सूचक एवकारका अर्थ अयोगव्यवच्छेद लगाया है सो इसमे अस्तित्वका अत्यन्ताभाव भी तो बन सकता है, क्योकि अस्तित्वके अत्यन्ताभावरूप नास्तित्वका घटमे सत्त्व है। जैसे कि घटमे अस्तित्व है इसी प्रकार घटमे नास्तित्व भी है और ऐसे अभावका अस्तित्व अप्रतियोगी रहे इसमे बाधा आ जाती है। तो यो जैसे कि उस वाक्यका अर्थ लगाया है क्रियासगत एवकारका भी जो अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थ लगाया है सो उससे तो नास्तित्वका घटमे निषेध प्राप्त होता है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि देखिये— यहा एवकारका जो अर्थ है वह प्रतियोगीके व्यधिकरणके अभावका अप्रतियोगी होना माना गया है। अर्थात् जैसे अधिकरणमे प्रतियोगी है उसीमे उसका अभाव भी हो ऐसा नही, किन्तु प्रतियोगीके अधिकरणमे न रहने वाला जो अभाव है उस अभावका अप्रतियोगी हैं याने घटमे पटका अभाव ही सिद्ध हो सकेगा। घटमे घटका नास्तित्व सिद्ध न होगा। क्योकि उस हीके धर्मको बताया जा रहा तो घटमे घटका

नास्तित्व कैसे कहा जा सकता है ? जैसे कि प्रयोग किया गया कि 'शख सफेद ही होता है' तो इसमे शखत्वका समानाधिकरण है शख । शखमे पाण्डुरके होनेसे अब उस एवकारका अर्थ अयोगव्यवच्छेदरूप बना । ऐसे ही स्यादस्तिएव घटमे एवकार का अर्थ घटके अस्तित्त्वका समर्थन करता ही है । इसमे यह शका नहीं कर सकते कि घटके अत्यन्ताभावको ही सिद्ध करदे एवकार । स्यादस्तिएव घट ऐसा कहनेसे सीधा यह अर्थ होता है कि स्वरूपसे घट है ही । अब इस 'ही, को घटके साथ लगा दिया जाय स्वरूपसे घट ही है, अथवा उस एवका अर्थ स्यात्के साथ लगा दिया जाय, घट स्वरूपमे ही है अथवा उस एवको क्रियामे लगा दिया जाय घट स्वरूपसे है ही । सबका मतलब यही निकलता है कि घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही है ' तो जैसे शख सफेद ही है । यहाँपर अन्यका प्रवेश नही हुआ । इसी प्रकार घट है ही ', इस अस्तित्त्वके प्रसगसे अन्यका नास्तित्त्व सिद्ध होता है तो वह तो युक्त है मगर सर्व प्रकारका अस्तित्त्व या नास्तित्त्व आये यह बात इष्ट नही है । घट अपने स्वरूपमे ही है, पर स्वरूपमे नही है, इसमे जो स्यात शब्द लगा है उस स्यात शब्दके आधीन एवकारका अर्थ है । उससे भी यह सिद्ध है कि घट अपने स्वरूपसे ही है ।

स्यात् शब्दकी अनेकान्त अर्थमे वृत्ति—

❀

इन भङ्गोंमें जो स्यात् शब्द लगाया गया है वह अनेकान्त विधि विचार आदि अनेक अर्थोंमे सम्भव है । लेकिन वक्ताकी विशेष इच्छा होनेसे स्यात् शब्दका अर्थ अनेकान्त अर्थमे ही लगता है । अनेकान्त शब्दका अर्थ क्या है ? अनेक अन्तरूप । अन्त मायने धर्मके हैं । अनेक धर्मरूप । तो अनेकान्तमें जो अन्त शब्द है उसका घटादिक शब्दमे अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है । तो अनेक धर्मात्मक घट यो कहो या अनेक धर्मस्वरूप अस्तित्त्ववान घट यह कहो, प्रथम भङ्गका अर्थ होता है । स्यात् शब्द लगते ही यह ध्वनित हो जाता है कि जिस धर्मसे अन्वित इस समय कहा जा रहा है उस धर्मके अतिरिक्त अन्य धर्मस्वरूप भी यह है । स्यात् शब्दमे ही जब अनेक धर्मस्वरूप घट ऐसा बोध हो गया तब अस्तित्वादिकका कहना व्यर्थ है, ऐसी शङ्का नही कर सकते । कोई यह सोचे कि एक स्यात् शब्दमे ही ऐसी सामर्थ्य है कि वह अनेक धर्म स्वरूप घटका बोध करादे तब स्यात् शब्दका ही प्रयोग करके रह जाय, अस्ति तत्त्व आदिकका कथन करना व्यर्थ है, सो ऐसा नही कहा जा सकता । क्योकि स्यात् शब्दसे तो सामान्यरूपसे ही अनेकान्तपनेका बोध हुआ । जहाँ स्यात् शब्द लगा दिया वहाँ यह अर्थ तो ध्वनित हो गया कि अनेक धर्मस्वरूप है मगर कैसे कैसे धर्मस्वरू है उसकी दिशाका बोध नही हो पाया । तो स्यात् शब्द बोलकर अनेकान्तका सामान्यसे ज्ञान हो गया तो भी विशेषरूपमे ज्ञान करानेके लिए अस्तित्त्व आदि शब्दोका प्रयोग करना

सर्वथा नही बनता अस्ति । उसकी निवृत्ति एक स्यात शब्दसे है और एव शब्द अवधारणके लिए है, कि इस अपेक्षासे ऐसा ही है ।

स्यात् शब्दकी स्याद्वाद न्यायमे आवश्यकता—

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये ! सब स्थानोंमें एवका शब्दके प्रयोग बिना भी जैसे अवधारणरूप अर्थका बोध हो जाता है उसको बोध कराने वाले एव शब्दका बोध शब्दकी शक्तिमे हो जाता है । मतलब यह है कि जैसे एवमे निश्चय करनेके लिए अन्य एवकी जरूरत नही रहती है और शब्दकी शक्तिमे ही अवधारणरूप अर्थ निकल आता है ऐसे ही यदि इस वाक्यमें स्यात् शब्दका प्रयोग न किया जाय तो भी वस्तु अनेकान्तरूप है ऐसे अर्थका ज्ञान करानेकी शक्ति होनेसे अनेकान्तरूप अर्थका बोध स्वय हो जायगा । याने इस तरहके पूरे सजे हुए वाक्योंमें प्रयोग न किया जाय अथवा एक किसी भी शब्दका सकेत करके कहा जाय तो सर्व अनेकान्त अर्थका बोध हो ही जायगा । इसलिए यह शब्द आवश्यक उपयुक्त नही है । इसके समाधानमे कहते हैं कि यद्यपि किसी हद तक ऐसा भी कुछ कहना ठीक हो सकता है किन्ही उचे ज्ञानी पुरुषोंके प्रति कि वे किसी भी एक शब्दको सुनकर सब अर्थोंका बोध करलें यो तो श्रुतज्ञानमें बडे बडे ऋद्धिधारी योगी ऐसे होते हैं कि किसी भी प्रकारका कोई भी शब्द सुनकर पूर्वापर सभी प्रसङ्गोका ज्ञान कर लेते हैं, लेकिन स्याद्वाद न्यायमे शिष्यो की प्रवीणता न हो तो केवल वस्तुके सामर्थ्य मात्रसे अनेकान्तरूप अर्थका भान न होगा । यो तो कोई पुरुष शब्द जरा भी न बोले, अर्थ ही निहारे तो पदार्थको देखते ही अनेकान्तका बोध कर लेगे पर जहा समझानेकी बात है और स्याद्वादन्यायसे समझाया जानेका प्रकरण है वहाँ तो पूरी सजावट पूर्वापर उपयोगी शब्दके सयोजनमे ही बोला जायगा । उन अकुशल शिष्योको अनेकान्तरूप अर्थका बोध करानेके लिये वाक्यमे स्यात् शब्दका कहना अत्यावश्यक है । और शिष्योकी यदि स्याद्वादमे कुशलता पूर्णतया है तो स्यात् शब्दका प्रयोग करना इष्ट ही है । जब प्रमाणादिकसे समस्त वस्तु अनेकान्तमय सिद्ध हो जाती है तब स्याद्वादमे जो प्रवीण हो गए हैं ऐसे मनुष्यो को अस्ति घट ऐसा प्रयोग किया जाय तो वे भी इतने मात्रसे यह बोध कर लेंगे कि कथचित् घट है, क्योकि उन्हें पता है । जिन्हे वस्तुस्वरूपका पूरा परिचय है वे तो वस्तुबोधक वचनोंमे कोई भी वचन सुन लें तो समग्र वस्तुका ज्ञान कर लेंगे, किंतु जो स्याद्वादमे कुशल नहीं हैं ऐसे पुरुषोको तो पूरे शब्दोका प्रयोग करनेसे ही समझाया जा सकेगा । अतएव स्यात अस्ति एव घट-इतने शब्दोका प्रथम भङ्गमें प्रयोग करना आवश्यक है । अन्य तत्रोंमे भी ऐसा कहा है कि यदि स्यात् शब्द न भी बोला जाय तो भी अनेकान्तके मर्मको जानने वाला पुरुष अर्थसे ही, सामर्थ्यसे ही अनेकान्तरूप अर्थ जान लेते हैं । जैसे एव शब्द प्रयोग आदिकके निराकरणके लिए कहा गया है,

अन्यकी निवृत्ति करनेके लिए एव शब्दका प्रयोग है, लेकिन कुशलजन एव शब्दके बिना भी अवधारण कर लेते हैं। तो एक साधारण पद्धतिमे प्रयोग इस प्रकारका ही किया जाना चाहिये कि कुशल अकुशल सभी पुरुषोके लिए उपयोगी हो।

स्यात् शब्दके प्रयोगकी व्यर्थताकी शङ्का—

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये ! जो घट आदिक पदार्थ हैं वे सब अपने आधीन द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके ही हैं, न कि अन्य पदार्थके आधीन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे हैं। क्योकि अन्य द्रव्य, क्षेत्र काल आदिकका तो प्रसग ही नही इसलिए अन्यका अभाव तो स्वय सिद्ध है। तब इस स्थितिमे स्यात् शब्दका प्रयोग करना व्यर्थ है। इस शकाका अभिप्राय यह है कि जैसे यहा कहा गया अस्तिघट तो इतना ही सुनने मात्रमे यह समझमे आ गया कि घट, घटमे रहने वाले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है। यह घडा अपने ही द्रव्यसे है। जो उसमे मौजूद है, जिसमे वजन है। जिसमे रूपादिक हैं उस अपने स्वरूपसे है घडा, अपने प्रदेशसे है, अपने परिणमनसे, है, अपनी भावशक्तिसे है। तो अस्ति घट इतना कहने मात्रसे ही बोध हो गया कि घट अपने स्वरूपसे है। बस यही जानना था। अब घट पट आदिकके रूपमे नही है। ऐसा कहनेका प्रसग ही क्या ? जो बात वहा पायी गयी उसको समझ लिया अथवा उसे समझाते ही वह अपने आप सिद्ध हो गया कि घडा कपडा आदिकके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे नही है। तो अस्तिघट इतना कहने मात्रसे समस्त अनेकान्तका बोध हो जाता है। फिर स्यात शब्द कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? अथवा शकाका दूसरा पक्ष है कि जितने द्योतक शब्द होते हैं, वे किसी शब्दसे प्रतिपादित अर्थके सम्बन्धमे ही कुछ कहते हैं। तो यहा स्यात् शब्द जब द्योतक है तो वह चीज बताओ जो चीज कह चुके हो और फिर उसके सम्बन्धमे कुछ समर्थन सा किया जा रहा हो। तो यहा यह बताना होगा कि यह स्यात शब्द किस शब्दसे प्रतिपादित अर्थको प्रकाशित करता है ?

स्यात् शब्दकी अव्यर्थताका व स्यात् शब्दसे द्योतित अर्थका वर्णन—

उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि अस्ति एव घट अपने द्रव्य क्षेत्र आदिककी विवक्षासे घट है ही आदिक वाक्यसे द्रव्यत्व-अर्थके आश्रयसे अभेद वृत्तिसे और पर्याय अर्थके आश्रयसे अभेदके उपचारसे जो अनेकान्त स्वरूप अर्थ प्रतिपादित हुआ है वही स्यात शब्दमे प्रकाशित हुआ है। प्रथम भङ्गमे अभेद उपचारसे कथन किया गया है। द्रव्यरूपसे घटकी सब दिशाओंने अभेद वृत्ति है। पर्यायें यद्यपि परस्परमे अनेक घटोमे भेद हैं लेकिन घटत्वकी अपेक्षासे एकत्व है, अतएव सर्वप्रकारके घटोमे अभेदका

उपचार है। सो अस्ति एव घट यह है प्रधान शब्द। जो अपने पदका निरूपण करता है, इस वाक्यसे ही अनेकान्त अर्थ ध्वनित हो जाता है। उसी अर्थको स्यात् शब्दने प्रकाशित किया है। चूंकि स्यात् शब्द निपात है अतएव यह प्रधान पद बताना ही होता है जिसके बारेमें स्यात् निपात शब्द कुछ विशेषता कर देता है। सकलादेश अर्थात् प्रमाणरूप सप्तभङ्गी अनेक दृष्टियोंसे प्रतिपादित धर्मको अभेदरूप दृष्टि करके बताता है और पर्यायरूप अर्थमें अभेदका उपचार करता है, क्योंकि एक ही समयमें पदार्थमें प्रसंग प्राप्त घटमें सत्त्व असत्त्वादिक समस्त धर्म स्वरूप हैं उनका प्रतिपादन हो रहा है, इसीलिए सकलादेश प्रमाणरूप है। सो जो अभेदको प्रधानतासे वर्णन करे उसे कहते हैं सकलादेश। यही कहलाता है प्रमाण सप्तभङ्गी। और जो भेदकी प्रधानतासे वर्णन करे वह कहलाता है विकलादेश। यह है नयरूप सप्तभङ्गी नयरूप सप्तभङ्गी क्रमसे भेदकी प्रधानताका प्रतिपादन करता है अथवा भेदके उपचारका प्रतिपादन करता है। सो विकलादेश नयरूप है। जहां कथनमें अभेदकी ओर झुकाव है वहां प्रमाणरूपता है। जहां भेदकी ओर दृष्टि है वहां नयरूपता है।

नयसप्तभङ्गी व प्रमाणसप्तभङ्गीके प्रयोजनभूत क्रम व यौगपद्यका स्वरूप—

꙰

इस समय प्रमाण सप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गीके रहस्यको समझनेके लिये अब यह जानना आवश्यक हो गया कि वह तत्त्व कौन है जिसका क्रमसे प्रतिपादन होनेसे नयसप्तभङ्गी होती है। और, जिसका अक्रमसे अभेदका ज्ञान करनेपर प्रमाण सप्तभङ्गी बनता है? इस विषयको समझनेके लिये पहिले यह ही जान लेना चाहिए कि क्रम मायने क्या है और यौगपद्य मायने क्या है? तो इसका लक्षण सुनो! जब अस्तित्त्व नास्तित्त्व आदिक धर्मोंके देशकाल आदिकके भेदसे कथन करनेकी इच्छा होती है तब अस्तित्त्व आदिक रूप एक ही शब्दके नास्तित्त्व आदिक रूप अनेक धर्मोंके परिचय करानेमें शक्ति नहीं होती। तब नियत जो भाव है, पूर्वापर कहने योग्य जो तत्त्व है उसका अनुक्रमसे निरूपण होता है। उसका नाम क्रम है और जब अस्तित्त्व आदिक धर्मोंका काल आदिकमें अभेद किया जाता है तब किसी एक भङ्गका अस्तित्त्व आदिक शब्दसे उपलक्षणसे अनेक धर्मोंका भी बोध हो जाता है इसलिए प्रमाणमें, सकलादेशमें नाना धर्म एक समयमें सम्भव है। इस ढंगसे जो वस्तुका निरूपण है? उसे यौगपद्य कहते हैं!

कालके द्वारा नाना गुणोंकी अभेदवृत्ति—

꙰

वे काल आदिक क्या हैं सो सुनो। जिसके अभेदका प्रतिपादन करनेमें प्रमाण सप्तभंगी होता है और जिसके भेदका प्रतिपादन करनेमें नयसप्तभङ्गी होता है। वे

उनमें अभेदका उपचार किया जाता है। यों द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानतासे अभेद वृत्ति का अभेद उपचार है जिसके कारण यहा सकलादेशका स्वरूप बनता है जिसने कि प्रमाण सप्तभङ्गीकी निष्पत्ति होती है। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षामे नाना गुणोमे भेद है उनका अभेदोपचार किया जा रहा है। इस तरह अभेदवृत्ति और अभेदोपचार के द्वारा किसी एक भगसे किसी एक शब्दमे कह गए जो समस्त धर्मोका समुदाय है तन्मात्र वस्तु है, बस उस ही अनेकान्तस्वरूपका द्योतक है स्यात् शब्द। यों इन भगोमे स्यात् शब्द कहनेकी सार्थकता है। यहां तक पदार्थ अनेकान्तात्मक है और इन भगो से उस अनेकात्मक पदार्थकी ही प्रसिद्धि की गई है, यह वर्णन किया गया है।

स्यादस्त्येव घट: स्यान्नास्त्येव घट इन दो वाक्योंके अर्थका विवरण—

अब वाक्यार्थका निरूपण करते हैं। इसमे वाक्य बोला गया है—स्यात अस्ति एव घट, स्यात नास्ति एव घट। इन दो भङ्गोके वाक्योके सम्बन्धमे विचार कर रहे है कि वाक्यका अर्थ यह है कि घटमे जो कम्बुग्रीवाकार रूपसे जो घटपना है अर्थात् घटमें जो एक सामान्य आकार पाया जाता है उससे सहित जो अस्तित्व धर्म है उसका आधार हुआ घट, यह बात कही गई है पहले वाक्यमे अर्थात् घटपनसे सहित जो अस्तित्व धर्म है उसका आधार घट है, यह अर्थ हुआ। स्यान्नास्ति एव घट इस वाक्यसे पटत्व आदिक पररूपसे सहित नास्तित्वका आधार है घट, यह अर्थ कहा गया, घट है ऐसे वाक्यसे उस स्वरूपका भान हुआ, जिस प्रकारसे कम्बुग्रीव आकार वाले स्वरूपका भान हुआ। कम्बुग्रीव कहते हैं शङ्खके आकार जैसे गलासे सहित, याने शङ्खका जो एक द्वार है, छिद्र है, जहांसे शङ्ख बजाया जाता है उस जगह शङ्खका जैसा गला आदिकका रूप है उस तरहका जहां आकार बनाया जाता है उसे कहते है कम्बुग्रीवाकार। घटमे चाहे छोटा बड़ा कैसा ही घट बनाया जाय वहां कम्बुग्रीवाकार घड़ना ही पड़ता है। तो यह आकार रूप धर्मसे सहित जो अस्तित्व है ऐसा यह घट है, यह बात पहिले वाक्यमे कही गई है। अब जैसे घटका अस्तित्व समझा गया ऐसे ही यह पट आदिक वस्तु नही है, यह भी तो समझा गया है। तो इस तरहसे अन्यका निषेध भी यहां भानमे आ रहा है। तब अन्य पदार्थके रूपादिकमे नास्तित्वका आश्रय भी घट है। घटमे अस्तित्व भी है नास्तित्व भी है। स्वरूपसे अस्तित्व है, पररूपसे नास्तित्व है। स्वरूपास्तित्वका भी आश्रयभूत है घट और पररूप नास्तित्वका भी आश्रयभूत है घट। तो ये दोनो बातें किसी भी कुशल पुरुषको भानमे आती हैं। घट आदिक समस्त वस्तु स्वरूपमे अपने रूपसे सत्व होना और अन्य रूपादिकसे असत्व होना, यह अवश्य मानना होगा। यदि ऐसा न माना जायगा तो वस्तुका स्वरूप ही न बनेगा। अपने स्वरूपसे सत्व नही है तो फिर बात ही क्या रही? पररूपसे असत्व नही है तो उसका सत्त्व न रहा। वस्तुका जो ग्रहण होता है वह वस्तुस्वरूपके ग्रहण से और परके स्वरूपके त्यागसे बनता है।

घटपटवाच्य स्वरूपसे अस्तित्व व पररूपसे नास्तित्व –

❀

अब वस्तुके अपने स्वरूपकी और पररूपकी बातका विस्तार करते हैं। स्वरूपसे अस्तित्वका होना, पररूपसे नास्तित्वका होना, इसके बिना वस्तुकी व्यवस्था ही नही बनती। तब यह जानना आवश्यक हो गया कि स्वरूप कहते किसे हैं ? और पररूप कहते किसे हैं ? तो अब सुनो! घट ऐसा बोलकर घट इस बुद्धिमे घटका प्रयोगसे भासमान और घटपटकी शक्तिसे जो कहा गया है उसमे जो घटत्व धर्म रह रहा है वह घटका स्वरूप है। घट सुनकर कहकर जो कुछ भी भासा है वह घटका स्वरूप है और उसके अतिरिक्त पटत्व आदिक ये घटके पररूप हैं। तो घट स्वरूपमें जैसे घटका सत्व है ऐसे ही पटत्वादिक रूपसे भी यदि सत्त्व माना जायगा तो घट पटरूप हो गया, वह स्वय घट न रहा। क्योंकि जैसे उस घटको घटस्वरूपसे माना ऐसे ही उस घटको पटस्वरूपसे भी मान लिया। तब घट न रहा और घटमे अन्य पट आदिक स्वरूपसे जैसे असत्त्व माना है, यदि स्वरूपसे ही असत्त्व मान लिया तो वहाँ कुछ न रहा। तो घट इस बुद्धिमे जो कुछ घटत्व धर्मसे सहित पदार्थ बुद्धिमे आया है वह तो है उसका स्वरूप और उसके अतिरिक्त पट आदिक समस्त पदार्थ हैं पररूप। तो ये स्वरूपसे सत हैं पररूपसे असत् हैं, यह बात सर्वत्र आवश्यक ही है। कोई कहे अथवा न कहे, पदार्थ तब ही अपना अस्तित्व रख पाता है जब कि वह अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नहीं है। है ही ऐसे समस्त। वस्तु समुदायके प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे हैं, पररूपसे नही हैं तभी तो उनका सत्व है, यह अनादिसिद्ध समस्त पदार्थोंमे है।

नाम स्थापना द्रव्य भावमे विवक्षित स्वरूपसे अस्तित्व व अन्यरूपसे नास्तित्व—

❀

अब स्वरूपसे जो कुछ पहिले समझा गया घटके बारेमे उसीमे और सूक्ष्म बुद्धि करके स्वरूप पररूपका विभाग करते हैं कि देखिये! जितने पदार्थोंके सम्बन्धमें व्यवहार होते हैं वे चार निक्षेपोके द्वारा होते हैं–नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। तब घट भी ४ प्रकारसे समझा गया। नाम घट, स्थापनाघट, द्रव्यघट, भावघट। अब इनमेसे जिस घटकी विवक्षा है वह तो हुआ घटका स्वरूप और जिस घटकी विवक्षा नही है और भी अन्य चीजें वे सब हैं पररूप। तब यहाँ यह कहा जायगा कि विवक्षित घट रूपसे तो यह है और अविवक्षितरूपसे यह नहीं है। नामघट स्थापनाघट, द्रव्यघट और भावघट। इनमेसे जिस प्रकारके घटको कहनेकी इच्छा जगी है या जिस भी घटको कहनेका हम यत्न कर रहे हैं वह तो है स्वरूप और अन्य है पररूप। यदि विवक्षित रूपसे भी घट नही है तब तो असत्त्व हो जायगा, जिसको हम देख रहे, ध्यानमें आ रहे, विवक्षा हो रही उस रूपसे भी घट नहीं है तो क्या है ? कुछ भी नही। खरगोश

के सीगकी तरह असत्त्व हो जायगा और यदि अविवक्षितरूपसे घट मान लिया जाता है तब तो नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इनमें परस्पर कोई भेद न रहेगा। फिर दूसरी निक्षेप ही क्यो कहे गए ? चार निक्षेपोमे चार प्रकारकी बुद्धि क्यो बन रही ? इससे सिद्ध है कि इन चार निक्षेपोकी दृष्टिमें चार प्रकारके घट जाने जाते हैं उनमेसे जो विवक्षित स्वरूप हो उसकी अपेक्षासे घट है और जो अविवक्षित स्वरूप है उसकी अपेक्षासे घट नही है। उनका तात्पर्य यह है कि घटके गुण आदिककी अपेक्षा निरख कर केवल एक लोकव्यवहारके लिए जो एक नाम बना दिया है उसका नाम है नाम घट। जैसे नाममात्रका घट। उसके बारेमे हम और कुछ भी नही जानना चाहते, किन्तु एक नाम भर आ गया है—वह हो गया नामघट। अब जो घट जाना जा रहा है, जिसमे हम स्थापना कर रहे हैं, बुद्धिका सकल्प कर रहे हैं समझ रहे है कि यह है घट इस प्रकारकी दृष्टिसे जो कुछ घटका भान होता है वह कहलाता है स्थापनाघट। द्रव्यघट जो घट बना था जो घट बनेगा ऐसी पर्यायोमे भी उस घट शब्दका प्रयोग होता है उसमे जो समझा गया है वह है द्रव्यघट, और घट पर्यायमे जो वर्तमान है उस पिण्ड दशामे जो घट पाया जा रहा है वह है भावघट। इन चार प्रकारके घटोमेसे जो घट विवक्षित है उस स्वरूपसे घट है और जो अविवक्षित है उस स्वरूपसे घट नही है। इसी बातको भङ्गोद्वारा समझाया गया और तर्क द्वारा बताया गया कि विवक्षित स्वरूपसे भी घट न हो तब शून्य हो जायगा। कुछ भी न रहा तथा अविवक्षितरूपसे भी यदि घट हो जाय, अविवक्षितका नास्तित्त्व न हो तब तो इन चार प्रकारोमे कोई परस्पर भेद भी न रहेगा।

परिगृहीत घटनिष्ठ स्थौल्यादि धर्म स्वरूपसे घटका अस्तित्व व इतरघटादि धर्मरूप पररूपसे नास्तित्व—

अब उससे भी और सूक्ष्म बातमे चलिए। स्वरूप और पररूपका प्रतिपादन घटत्वसे सहित घट देखे गए थे, अब उनमेसे भी जिस प्रकारका घट ग्रहणमे आ रहा उसमें रहने वाला जो मोटापन, रगादिक है ये धर्म स्वरूप हुए और उस मोटाई आदिक धर्मसे भिन्न धर्म वाले अन्य घटादिक व्यक्ति अन्य घट उनमे पाये जाने वाले जो कुछ आकार प्रकार आदिक हैं वे हैं पररूप। तब यहाँ अस्ति नास्तिकी बात घटितकी कि उस स्वरूपसे जो है वह तो है प्रथमभङ्ग और पररूपसे नही है यह है द्वितीयभङ्ग। जैसे घट, इतना ग्रहणमे आये हुए आकारका, जितना मोटाईका बस उस धर्मसहित घट है और उसके अतिरिक्त अन्य मोटाई आदिककी अपेक्षासे नहीं है। यदि स्वरूपसे भी घट न रहे तो तो असत्त्व हो जायगा। और यदि पररूपसे भी वह घट बन गया। अन्य घट की अपेक्षासे भी यह घट बन गया तो सारे घट एक हो जायेंगे, फिर व्यवहार का लोप हो जायगा। बड़े बडे घट भी होते हैं—जैसे मटका। छोटे घट होते है और

वर्तमान क्षणवर्ति घट पर्यायस्वरूपसे अस्तित्व व अतीतानागत घट पर्याय पररूपसे नास्तित्व—

❀

अब उस हीमे और सूक्ष्मतासे निरीक्षण कर। घटमे प्रतिक्षण सजातीय परिणमन हो रहा है यह तो सिद्धान्तकी बात है। सभी पदार्थोंमे सर्वत्र परिणमन होता रहता है। जैसे कोई घडा १० दिन तक वैसाका ही वैसा है। १० दिनकी क्या बात, ५ मिनट भी ज्योका त्यो समझमे आ रहा है। लेकिन परिणमन निरन्तर हो रहा है। वहा एक समान परिणमन होते रहनेसे यह विदित नही हो पाता कि यह परिणम रहा है। जब घट फूट जाय, या बिल्कुल रूप बदल जाय तब पहिचान होती है कि लो अब यह घटकी दिशा बदल गई। लेकिन बदलता है प्रति समय। तो घट आदिक पदार्थोंमे प्रति समय सजातीय परिणाम होता रहता है। तो ऋजूसूत्रनयकी अपेक्षामे वर्तमान क्षणमे रहने वाली जो घट पर्याय है वह तो है घटका स्वरूप और अतीतकालमे अनागत कालमे जो घट पर्याय है वह है पर्यायरूप। जैसे यही एक घडा महीने भर तक रहेगा। लेकिन जिस समयमे जिस पर्यायरूपसे घटको देखा जा रहा है बस उसी क्षणकी घट पर्यायरूपसे वह घट है और पूर्वोत्तर अन्य क्षणोंमे घट पर्याय रूपसे भी घट नही है। अब यहा तर्कोर इसे कसकर देखें कि यदि उस समय के रहने वाले स्वभावसे जिसे कि सत माना है यदि अन्य क्षणोमे रहने वाले घट भावसे भी उसका अस्तित्व हो जाय तो सब कुछ एक क्षणमे ही हो जाना चाहिए ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे वर्तमान एक क्षणमे जिसे निरखा जा रहा है और है, उस ही स्वरूपसे वह है। और पूर्वोत्तर क्षणोमे रहने वाली उस सजातीय पर्याय रूपसे वह हो जाय तो सब कुछ एक क्षणमे ही रहने वाला हो जाय। इसी प्रकार यदि क्षण-क्षणमे जैसा वह है और अन्य क्षणोमे रहने वाले स्वभावसे नही है। यहा यदि यों कोई ठान ले कि अन्य क्षणोंमें रहने वाली पर्यायसे जैसे घटका नास्तित्व है इसी प्रकार उस क्षणमे रहने वाले घटभावकी अपेक्षा भी नास्तित्व है। तब तो घटके आश्रयसे व्यवहार ही नही बन सकता। स्वरूपसे भी अब घट नहीं रहा तो घट कहेंगे किसको ? जैसे जो घट अभी उत्पन्न ही नही हुआ ऐसी माटीमे कौन घटका व्यवहार करता है ? अथवा घट नष्ट हो गया तो उन कपाल टुकडोमे कौन घटका व्यवहार करता है ? तो जैसे नष्ठ और अनुत्पन्न घटमे घटका व्यवहार नही होता इसी प्रकार पूर्वोत्तर पर्यायोमे रहने वाले घटोंमे भी घटका व्यवहार नहीं होता। और, अपने क्षणमे रहनेवाले घटकी अपेक्षासे भी यदि अस्तित्व माना जाय तो उसमे भी घटका व्यवहार न होगा।

घटका पृथुबुध्नोदराद्याकार स्वरूपसे अस्तित्व इतराकाररूप पररूपसे नास्तित्व—

❀

अथवा अब और उसमे सूक्ष्म दृष्टि करें तो उस ही क्षणवर्ती घट पर्यायमें और स्वरूप पररूपका भेद किया जा सकता है। घट है रूप, रस, गंध, स्पर्शका समुदायरूप अब उस समयमे घट समझने वालेने निरखा है वह प्रतिबुघमे उदररूप आकार अर्थात् बीचमे मोटा विशाल और ऊपर नीचे संकुचित ऐसा आकार देखता हुआ वह घट समझ रहा है। तो उस समयमे वह आकार स्वरूप है और अन्य आकार पररूप है। तो वहाँ उस प्रतिबुघ्नोदर आकारसे तो घट है और अन्य आकारसे घट नही है। अब यह विचार करलें कि प्रतिबुघ्नोदर आदिक आकारके सत्त्वमें घट व्यवहारका सत्त्व है और वह आकार न हो तो घट व्यवहार नही होता, क्योंकि व्यवहार उस-उस प्रकार के आकारमे ही नियत हुआ करता है। अब यहाँ यदि प्रतिबुघ्नोदर आकारसे भी घट अस्तित्व न माना जाय तो स्वरूपमे सत्त्व न माना जाय तो घटका असत्त्व हो जायगा। यदि अन्य आकारसे भी अस्तित्व मान लिया जाय अर्थात् पररूपमे अस्तित्व मान लिया जाय तो उस प्रकारके आकारसे शून्य घट आदिकमे भी घट व्यवहारका प्रसङ्ग हो जायगा। यहाँ दृष्टि हो रही है एक प्रतिनियत आकार की ओर उसको ही दृष्टिमें रखकर घट जाना जा रहा है। तो घटका स्वरुप है यह प्रतिनियत आकार है, अन्य आकार पररुप हैं। तो इस आकारसे घट है अन्य आकारसे घट नही है। मानो कई प्रकारके घट रखे हैं—कुछ लम्बे, कुछ मोटे, कुछ कलशा जैसे कुछ सुराही जैसे। अब जिस आकारको निरखकर घट समझा जा रहा है, बस घटका स्वरुप भी आकार है और अन्य आकार उसका पररुप है। तब वहाँ यह लगाया जायगा कि वह घट अपने स्वरुपसे है और पररुपसे नही है।

रूप स्वरूपसे घटका अस्तित्व व रसादिपररूपसे नास्तित्व—

❀

अथवा और भी सूक्ष्म दृष्टिसे आगे चलें तो देखिये ! जिसको चक्षुसे घट दिखा तो रुप सहित ही तो घट दीखा। तो अब उसका इस घट व्यवहारमे स्वरुप बना रुप और रसादिक बने पररुप तो वहाँ वह घडा रुप मुखसे तो है और रसादिक मुखसे नही है। यद्यपि घट पिण्डमे रुप, रस, गंध स्पर्श ये चारो ही बातें हैं, एक बात तो कभी रहती भी नही। प्रत्येक पुद्गल पिण्डमे चारो ही बातें एक साथ होती हैं। लेकिन जब चक्षुसे देखा तो ग्रहणमेंरुप ही आया। उस समय घटका स्वरुप रुप है और घट का पररुप रसादिक हैं। तो कैसे यह घटित होगा कि यह रुप स्वरुपसे तो है, क्योंकि चक्षुइन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो रहा है और पररुपसे नही है। यदि घट पररूपसे हो जाय अर्थात् चक्षुइन्द्रियके द्वारा जो देखा गया है घट वह घट यदि रसरुपसे भी अंगीकार कर लिया जाय तब फिर रसना आदिक इन्द्रियकी कल्पना करना व्यर्थ है। आँखोंसे निरखा और उस घटमे मान लिया रसादिकसे तन्मय तो फिर अन्य इन्द्रियकी क्या आवश्यकता रही ? चक्षुसे ही सब कुछ समझ लिया रुपवान घट, रसवान घट आदि

नहीं है। यदि घट जैसे स्वद्रव्यरूपसे है इसी तरह परद्रव्यरूपसे भी हो जाय तो घट मिट्टीमय न रहेगा किन्तु स्वर्णादिक रूप हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं है। यह घट मिट्टीका ही है। स्वर्णादिकमे नही है, यह तो नियम देखा जा रहा है और जब जैसे घट स्व द्रव्यसे है ऐसे ही पर द्रव्य रूप मान लिया जाय तो यह नियम नही रह सकता। जब यह नियम न रहेगा तो द्रव्यका प्रतिनियम भी विरुद्ध पड़ जायगा। द्रव्यमे प्रतिनियमके विरुद्धकी बात सुनकर शकाकार कहता है कि देखिये सयोग विभागादिक गुण अनेक द्रव्योंके आश्रय रह रहे हैं फिर भी इनमे द्रव्यके नियमका विरोध नही आता। जैसे सयोग कहते हैं अनेक द्रव्यके आश्रय नही, जिसपर भी सयोग इन इन द्रव्योका है अन्यका नही। यह नियम बराबर देखा जा रहा है। अथवा विभाग पृथक हो जाना इसका भी आश्रय अनेक द्रव्य हैं। गुण क्या पृथक हुआ ? यों आधार अनेक द्रव्य हुए तिस पर भी यह द्रव्य इसमे अलग किया गया। ऐसा नियम देखा ही जा रहा है। तो यह कहना कि अनेक द्रव्यरूपसे अगर सत् हो जाय तो द्रव्यका प्रतिनियम न रहेगा। यह बात नहीं कह सकते। सयोग विभाग आदिकमे अनेक द्रव्योका आश्रय होनेपर भी द्रव्यका प्रतिनियम विरोध नही देखा जा रहा है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि यह कहना युक्त नही है। कारण यह है कि सयोग विभाग आदिक ये अनेक द्रव्यके गुण हैं। याने एक गुण है और अनेक द्रव्योंके आश्रय है ऐसा नही है, किन्तु जितने द्रव्य हैं उतने ही सयोग विभाग आदिक गुण हैं। तो उन प्रत्येक गुणोंका अपने-अपने आधारभूत द्रव्य ही स्वद्रव्य है। इस कारण अनेक द्रव्य उनका आधार होनेसे अनेक स्वद्रव्य रूपसे उनकी सत्ता युक्त है और अपना जहा आश्रय नहीं है ऐसा द्रव्यान्तर अथवा सयोग विभाग आदिकके लिये हम द्रव्य कहलाते हैं। यदि अपने अनाश्रय वाले द्रव्यात्मकरूपसे भी सयोग आदिक की सत्ता बन जाय तो वहाँ भी अपने आश्रयभूत द्रव्यका प्रतिनियम न रहेगा। तो यो संयोग विभाग आदिक भी जिन-जिन द्रव्योके आश्रय हैं वे वे द्रव्य उन सयोग विभाग आदिकके स्वद्रव्य कहलाते हैं। तो देखिये वहां भी तो यह द्रव्यका प्रतिनियम पड़ा हुआ है कि यह सयोग विभाग इस द्रव्यका है। इस सयोग विभागका स्वद्रव्य यह है। हैं वे अनेक द्रव्य, पर वहाँ भी नियम है और जिसमे सयोग विभाग नहीं है और सयोग विभागके आश्रयभूत है ऐसा कहलाता है परद्रव्य। तो परद्रव्यात्मककी तरहसे स्वद्रव्यात्मक रूपसे भी घटका असत्व हो जाय तो समस्त द्रव्योकी अनाश्रयता होगी, फिर उसका कभी भी आश्रय ही न रह सकेगा। तात्पर्य यह है कि घटका स्वद्रव्य मृतिका है और परद्रव्य स्वर्णादिक है। यदि घट स्वद्रव्य रूपसे जैसा है उस प्रकार यह पर द्रव्यरूपसे भी हो जाय तो वहां द्रव्यमे नियम न रहेगा कि यह घडा मिट्टीका है और यदि जैसे परद्रव्यरूपसे घटका असत्व है यो ही स्वद्रव्यरूपसे घट का असत्व हो जाय तो वहाँ घटका असत्व हो जायगा। कोई आधार न रहा, तो

घटवस्तु ही न रही, फिर सप्तभङ्गी क्या लगायी जायगी ? अथवा व्यवहार भी कैसे चलेगा ? इस प्रकार स्वद्रव्यकी अपेक्षा घटका स्वरुप और पररुप कहा।

घटका स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे अस्तित्व व परक्षेत्रापेक्षया नास्तित्व—

❀

अब क्षेत्रकी अपेक्षासे घटका स्वरुप और पररुप क्या है यह बतलाते हैं ? जिस स्थानमे घट है वह जमीन अथवा भींट आदिक घटका स्वक्षेत्र है और अन्य घट आदिक जहाँ कि घट नही है वह घटका परक्षेत्र है। अब यहा यह घटित कीजिए कि घट अपने क्षेत्रमें है पर क्षेत्रमे नही है। घटकी जैसे स्वक्षेत्रमें सत्ता है ऐसे ही यदि परक्षेत्रमे भी मान लिया जाय तो यह घट अमुक जगह है। अमुक जगह नहीं है, यह विभाग न बन सकेगा, क्योंकि अब तो घटका सत्त्व अपने क्षेत्रमें और अन्य क्षेत्रमें दोनो जगह मान लिया गया तो घट कहा है, कहा नही है, यह विभाग न हो सकेगा। और इसी तरह जैसे कि पर क्षेत्रमे घटका असत्त्व है भींट आदिक पर घट नही है, ऐसे ही जहाँ घट है उस क्षेत्रमे भी असत्त्व मानें तो घट निराधार हो गया। फिर घटकी कोई सत्ता ही न रही। यह बात कही गई है पर क्षेत्रके स्वरुप और पररुपको लगाकर। यदि स्वक्षेत्रमे ही स्वरुप पररुप लगाकर घटित किया जाय तो घट जिस देशमें है वह है घटका स्वक्षेत्र और उनके अतिरिक्त अन्य देश परक्षेत्र है। तो इस स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे भी यह घटित किया जा सकता है कि घट स्वक्षेत्रसे है, परक्षेत्रसे नही है। यो घटके उदाहरणसे क्षेत्रकी अपेक्षासें स्वरुप पररुप बताये गए हैं।

घटका स्वकालकी अपेक्षासे अस्तित्व व परकालकी अपेक्षासे नास्तित्व—

❀

अब कालकी दृष्टिमे घटका स्वरुप और पररुप अथवा स्वकाल और परकाल का निरीक्षण करो। घटका स्वकाल है वर्तमान काल। जिस कालमे घट है वह है घटका स्वकाल। और, भूत, भविष्यकी स्थितिया परकाल हैं। तो उनमेसे स्वकाल मे तो घट है और परकालमे घट नही है। यदि स्वकालकी तरह परकालमे भी घट का सत्त्व माना जाय तो इस कालमे यह घट है इस प्रकारका नियम तो रहेगा नही। तब घट नित्य कहलायेगा। घट कितने समय तक रहेगा, बादमे फूट गया पहिले पता न था, ये सब बातें विरुद्ध पड जायेंगी। क्योकि घटका सत्त्व स्वकालकी तरह परकालसे भी मान लिया गया, किन्तु ऐसा है नही, इससे मानना होगा कि घट स्वकालमें है, पर कालमें नहीं है। इसी प्रकार जैसे कि परकालमे घटका असत्त्व है यों ही स्वकालमे भी घटका असत्त्व मान लिया जाय तो जब अपने कालमे भी घट न रहा तो घट कुछ रहा ही नहीं। फिर घट अवस्तु हो गया क्योकि कालसे सम्ब-

थित होनेका ही नाम वस्तुपना है। अपने कालसे रहे तब तो वस्तुका वस्तुपन है। वह न स्वकालमे रहा न परकालमे। तो जब कालसे रहा ही नही तो वस्तुन इसकी कोई स्थिति नही, कोई परिणमन नही। तब वस्तुपना ही क्या हो सकता है ? इस तरह घट अपने कालसे है, परकालसे नही है। यो कालमे भी स्वरूपास्तित्व और पररूपनास्तित्वका वर्णन किया।

भावापेक्षया घटका घटत्व स्वरूपसे अस्तित्व व पटत्वादिपररूपसे नास्तित्व—

❀

अब भावकी अपेक्षासे स्वरूप पररूप देखिये ! घटका भाव है घटत्व और पर भाव है अघटत्व, पटत्व आदिक। तो घट घटत्वरूपसे है, पटत्वरूपसे नही है यो भाव की अपेक्षासे घटमे स्वरूप, पररूप होते हैं। यदि घट जैसे घटत्वरूपसे है वैसे ही पटत्व रूपसे भी हो जाय तो वहाँ भाववानका प्रतिनियम नही हो सकता कि यह घटत्व धर्म से अवच्छिन्न पदार्थ है। यह घट है और उस स्थितिमे घटका व्यवहार और उपयोग भी न हो सकेगा। जैसे घट पटत्व आदिक रूपसे नही है ऐसे ही घटत्वरूपसे भी न रहे तब घट अवस्तु हो जायगा। इस कारणसे भावकी अपेक्षा भी स्वरूपास्तित्व और पर रूप नास्तित्व मानना होगा। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे और एक-दम निर्णय व्यवहारमे लेनेकी दृष्टिसे इसका कथन किया जाय तो यो कहना चाहिए कि घट मिट्टी द्रव्यसे है, स्वर्णादिक द्रव्यरूपसे नही है। घट अपने क्षेत्रसे है परक्षेत्रसे नही है। घट अपने कालसे है, परकालसे नही है और अपने धर्मोंरूपसे है, परके धर्मरूप से नहीं है। इस प्रकार घटका अस्तित्व स्वरूपसे रहा, पररूपसे न रहा।

घटत्वेनास्ति व पटत्वादिना नास्ति इन दो वाक्योका बोधप्रकार—

❀

अब यहाँपर इन वाक्योका अर्थ समझना है तो उसका रीतिपूर्वक वर्णन करते हैं। घट घटत्वसे है, इस वाक्यका अर्थ यह है कि घट घटरूपसे है। यहाँपर घटत्वेन ऐसा तृतीय विभक्तिमे बना दिया है उसका अर्थ है अवच्छिन्नत्व, सहितपन। घट घट-त्वरूपसे है इसका अर्थ हुआ घट घटत्व धर्मसे सहित है। घट तो एक प्रकृत बात है, जिसके विषयमे निर्णय किया जा रहा है और अस्ति शब्द अस धातुसे बना है। अस धातुका अर्थ है सत्त्वमें होना, उसमे तिप् प्रत्यय लगाया गया जिससे कि उसका प्रसिद्धि अर्थ हुआ आश्रय रहना। तब घट घटत्वेन अस्ति, इस वाक्यका स्पष्ट बोध यह हुआ कि घटत्वका अवच्छिन्न जो अस्तित्व है, उसके आश्रयभूत घट है याने घटत्व धर्म से सहित है अस्तित्व। उस अस्तित्वका आधार घट है। जहा घटके धर्म पाये जा रहे हैं ऐसा यह घट है। यह घट घटत्वेन अस्ति, इस प्रथम वाक्यका अर्थ है। यहा पट-त्वेन नास्ति इसका अर्थ भी एक आधार रूपसे बनेगा, क्योकि अभाव भी अधिकरण-

त्मक रूपसे होता है, अभाव तुच्छाभाव नही माना गया है, किन्तु अभाव भी किसी एकका अभाव वाला होता है। जैसे पटका अभाव घट और घटका सद्भाव घट। तो अभावका अधिकरणात्मक रूप होनेसे पटत्वसे सहित अभाव भी घटस्वरूप रहा। याने पटत्व धर्मका अवच्छिन्न जो अभाव है मायने पटपना न होना, इसका आश्रय भी क्या रहा ? घट। घटमे पटके धर्म नही हैं। तो यो घट पटत्वेन नास्ति, इस वाक्यका अर्थ हुआ कि पटत्वका अवच्छिन्न अभावका आश्रय है घट। इस दूसरे वाक्यमे जो नय सभास लगाया गया है नास्तित्व, उसका अर्थ है अभाव। तो यो अर्थ लगाना कि अघटत्व अर्थात् पटत्व आदिक धर्मोका अवच्छिन्न अभाव घट है। इससे भी बात सत्य हुई कि घटमे घटत्व आदिकका अभाव स्वरूप है। अभाव अधिकरणात्मक माना गया है। तो यो घट घटत्वेन अस्ति इसका अर्थ ह्या घटत्व धर्मसे सहित अस्तित्वका आश्रय घट है। घट घटत्वेन नास्ति। इसका अर्थ हुआ कि पटत्व धर्मसे सहित अभावका आश्रय घट है। उक्त दो वाक्योके बोध प्रकारकी तरह घट मृत्तिका द्रव्यरूपसे है इत्यादि वाक्योका भी तत्तद्धर्मविच्छिन्नरूपसे अर्थ समझ लेना चाहिये।

शंकाकार द्वारा स्वरूपका स्वरूप पररूपान्तर मानने व न माननेमे दोषापत्ति का प्रदर्शन -

❀

यहाँ शङ्काकार कहता है कि सब पदार्थोंकी व्यवस्था स्वरूप चतुष्टयसे और पररूपादिक चतुष्टयसे मानी गई है। स्वरूपादिक चतुष्टयसे अस्तित्व और पररूपादिक चतुष्टयसे अस्तित्व माना है पर यह बतलाओ कि स्वरूपादिककी व्यवस्था कैसे बनेगी क्योकि स्वरूपमे स्वरूपान्तर तो होता नही, जिससे कि स्वरूप अपने स्वरूपसे कहा जाय पररूपसे न कहा जाय। यदि उन स्वरूपादिक चतुष्टयोका भी स्वरूप चतुष्टय मान लिया जाय तो अनवस्था दोष होगा फिर तो उस स्वरूप चतुष्टयका भी स्वरूप चतुष्टय होना चाहिए। यो बहुत दूर जाकर भी यदि किसी जगह ऐसा मान लेते हैं कि उसका स्वरूपान्तर नही भी है तो भी स्वरूपकी व्यवस्था है तब फिर पहिलेसे ही किसी पदार्थमे स्वरूप चतुष्टयकी अपेक्षा सत्त्व और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे असत्त्व ऐसे समर्थनसे क्या फायदा है ? वह तो अपने घरकी मानी हुई प्रक्रिया है कि प्रतीतिके अनुसार वस्तुकी व्यवस्था बनती है।

वस्तुस्वरूप प्रतीति द्वारा स्वरूप स्वरूपान्तरके बोधसे पूर्ण समाधानकी सहजता—

❀

उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि स्वरूप चतुष्टयके लिए स्वरूप चतुष्टय दूसरा माना जाय न माना जाय आदिक विचारोसे दोषापत्तिका उपालम्भ करना अयुक्त

है, कारण कि अभी आप (शङ्काकार) वस्तुके स्वरूपकी परीक्षासे अनभिज्ञ हैं। वस्तु स्वरूपकी प्रतीति स्वरूपसे सहित सत्वको विषय करता है और पररूपसे सहित असत्व का विषय करता है अन्यथा यदि वस्तुमे स्वय ऐसा स्वरूप न माना जाय तो नाना निरकुश विवाद खडे हो जायेंगे। वस्तुकी बाधारहित जिस तरह प्रतीति हो सकती है उस ही प्रकार स्वरूपकी व्यवस्था की जाती है। क्योंकि प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणके आधीन है, ऐसे भगवद् वचन है और इस प्रकार स्वरूपादिककी स्वरूपादि दूसरी प्रतीति होती है या नही, इसक स्वरूप आद्यन्तर तो माना ही नही गया है, इस प्रकार उनके अस्तित्व और नास्तित्वकी व्यवस्था नही है, इसको अभी बताया है और आगे भी बतायेंगे। हा स्वरूपादिकमे स्वरूपादि अन्य माने जा सकते हैं प्रतीतिके अनुरोधसे। कदाचित स्वरुपके सम्बन्धमे भी विवाद हो गया तो वहाँपर भी स्याद्वाद सप्तभङ्गीके ढगका वर्णन किया जायगा। इस तरह वहा अनवस्था नही आती। जहापर अन्य स्वरूपान्तरकी प्रतीति हो रही है बस वहा व्यवस्था बन ही जाती है। वस्तुको निरख कर पहिली बार जो स्वरूप समझमे आया उससे वस्तुकी व्यवस्था बन गई अथवा जहाँ स्वरूपाद्यनादिकी प्रतीति हुई वही व्यवस्था बन जाती है, फिर अन्य कल्पना करना व्यर्थ है।

उदाहरण द्वारा वस्तुस्वरूप, स्वरूप स्वरूप आदिका निर्णय—

ꣻ

जैसे जीवका लक्षण उपयोग कहा गया है। उपयोग लक्षण ऐसा तत्वार्थ महा शास्त्रमे कहा भी है। तो जीवका लक्षण उपयोग है। वह तो है जीवका स्वरूप और अनुपयोग हुआ पररूप। अब उपयोगकी दृष्टिसे जीवका सत्त्व है, अनुपयोगकी दृष्टिसे जीवका असत्त्व है अर्थात् जीव स्वरूप है, अनुपयोगमय नही है। उपयोग सामान्यका भी अगर कोई स्वरूप समझना चाहे कि भाई जीवका लक्षण उपयोग है इस शब्दने तो बात बता दिया मगर उपयोग सामान्यका भी क्या स्वरूप है? तो उन्हे बताया जा सकता है कि ज्ञान दर्शनरूप है उपयोगका स्वरूप। और, अन्य है पररूप उपयोग विशेष जो ज्ञान है उसका क्या स्वरूप है? कोई पूछे तो उसका भी स्वरुप कहा जा सकता है कि अपने अर्थके निश्चयात्मक जो प्रतिभास है वह है ज्ञानका स्वरूप। और, दर्शनका क्या स्वरुप है। तो उसका अन्य किसी आकार रुपसे नहीं, किन्तु प्रतिभास सामान्यसे जो ग्रहण है वही दर्शनका स्वरुप है। फिर परोक्ष ज्ञानका स्वरुप क्या है? अविषदपना जहाँ स्पष्टता नही है, निर्मलता नही है वह है ज्ञानका स्वरुप। प्रत्यक्षका क्या स्वरुप है? निर्मलता। दर्शनका भी क्या स्वरुप है? तो चक्षु और अचक्षुके निमित्तसे चक्षु आदिक जन्य पदार्थका सामान्यतया ग्रहण होना यह दर्शनका स्वरुप है। अवधिदर्शन का क्या स्वरुप है? अवधिज्ञानके विषयभूत अर्थका सामान्यतया ग्रहण होना सो अवधिदर्शनका स्वरुप है। परोक्षज्ञान, मतिज्ञान, उसका क्या स्वरुप है? इन्द्रिय और

मनसे उत्पन्न होनेपर अपने विषयभूत अर्थाकारका निश्चय करना यह है मतिज्ञानका स्वरूप और मनसे उत्पन्न हुआ विषय है श्रुतज्ञानका स्वरुप । प्रत्यक्ष ज्ञानका क्या स्वरुप है ? प्रत्यक्षज्ञान होते हैं ८ प्रकारके विकल प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष । तो विकल प्रत्यक्षका स्वरुप है इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर स्पष्टरूपसे अपने विषयभूत पदार्थका निश्चय करना यह है विकल प्रत्यक्षका स्वरुप । सकल प्रत्यक्षका क्या स्वरुप है? वह है केवल ज्ञान । समस्त द्रव्य पर्यायोका साक्षात्कार करना यह है सकल प्रत्यक्ष का स्वरुप। तो स्वरुपमे भी स्वरुपान्तर होता है । और जहा स्वरुपान्तर जाननेकी जिज्ञासा नही रहती है । अपने विषयमे स्पष्टीकरण हो जाता है बस वहाँ सम्बन्धित होता है उससे आगे अनवस्थाका अवकास नही है । तो यह है उसका स्वरुप और उससे अन्य जो कुछ है वह पररुप है । यो स्वरुपसे सत्त्व और पररुपसे असत्त्व सभी स्थितियो मे घटित होता है । यहाँपर भी उत्तरोत्तर विशेषोमे पहिचाना जाय तो स्वरुप और पररुप निश्चित होते चले जायेंगे क्योकि जो उनके विशेष हैं और उनके भी विशेष हैं वे अनन्त हो सकते हैं । जहाँ तक जिज्ञासा है वहाँ तक ज्ञान चलता जायगा, जहाँ निर्णय हो चुका उसके आगे ज्ञान परिअवसित हो जाता है अर्थात अब ज्ञान जानता ही रहता है यो सभी पदार्थोंमे स्वरुप पररुप होता है और उससे ही सत्त्व असत्त्वका निर्णय किया जाता है ।

प्रमेयके स्वरुप पररूपके सम्बन्धमे विचार—

अब शकाकार कहता है कि प्रमेयका क्या स्वरुप है और प्रमेयका क्या पररुप है ? जिन स्वरुप और पररुपके द्वारा प्रमेयका अस्तित्व और अत्यका अस्तित्व सिद्ध किया जाय ? उत्तरमे कहते हैं कि प्रमेयका प्रमेयत्व स्वरुप है और घटत्व आदिक पररुप है । उसका प्रयोग यो होगा कि प्रमेय प्रमेयत्व रुपसे है, और घटत्व आदिक रुपसे नही है । इस विषयमे कुछ लोग यह भी कहते हैं कि प्रमेयका स्वरुप प्रमेयत्व है और अप्रमेयत्व पररुप है । इस विषयमे कोई ऐसी शका करे कि प्रमेयत्व पररुप है । इस विषयमे कोई ऐसी शका करे कि प्रमेयत्व नाम तो प्रमेयत्वके अभाव का है और प्रमेयत्वका अभाव अप्रसिद्ध है क्योकि प्रमेयका अर्थ है कि जो प्रत्यक्ष प्रमाण आदिकसे जाना जाय, सो ऐसा कौनसा पदार्थ है जो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोमे नही जाना जाता है तो जाना जाता है तो प्रमेयत्वका अभाव अप्रसिद्ध है । ऐसी शका नही कर सकते । चर्चाकार कह रहे हैं क्यो शका नही कर सकते ? यो कि प्रमेयत्वका अभाव भी शृग व अश्वशृग आदिकमें प्रसिद्ध है याने खरगोशके सींग अप्रमेय है, अवस्तु है । प्रमेय प्रमेयत्वरुपसे है और अप्रमेयरुपसे नही है । चर्चाकार के प्रति शकाकार कहता है कि खरगोशके सींग आदिकका प्रमेयत्व रुपसे लोकव्यवहार है इसलिए खरगोशके सींग आदिकमे जो प्रमेयत्वका अभाव है उसका भी

प्रमेयत्व हो जायगा। खरगोशके सींग नही है इस प्रकारका ज्ञान तो हुआ ना! तो खरगोशके सींगका दृष्टान्त अत्यन्ताभावके लिये दिया जाता है ना! सो जो प्रमेयत्व का अभाव है यह भी प्रसिद्ध है इसलिये यह भी प्रमेय बन जाता है। खरगोशके सींग नही हैं इस प्रकारका ज्ञान तो हो ही रहा है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कह नही सकते, क्योकि प्रमेयत्वके अभावके जाननेमे साधक कोई प्रमाण नहीं है इस कारण प्रमेयत्वके अभावमें प्रमेयत्वकी सिद्धि नही हो सकती। इसका कारण यह है कि प्रमाणसे उत्पन्न जो प्रतीतिरूप फलमें प्रमितिका विषय है उसको प्रमेय कहते हैं। तो प्रमेयत्वका अभाव इस प्रकारका प्रमाण नहीं बनता कि वह प्रमाणजन्य हो। ऐसा प्रमितिका विषय बने यह युक्तिसे सिद्ध नहीं है। तो यो प्रमेयत्व स्वरूपसे और अप्रमेयत्व पररूपसे प्रमेयका अस्तित्व तथा नास्तित्व बराबर सिद्ध है ऐसा कुछ लोग कहते हैं कि प्रमेयका स्वरूप प्रमेयत्व है और पररूप अप्रमेयत्व है।

षटद्रव्योके स्वरूप पररूपका विचार—

अब यहाँ शङ्काकार कहता है—अच्छा, भाई! यह बताओ कि जीवादिक ६ द्रव्योका स्वद्रव्य क्या है? और परद्रव्य क्या है? जिस स्वरूप और पररूपसे अस्तित्व और नास्तित्वकी व्यवस्था की जाय, क्योंकि जीवादिक ६ द्रव्योंके अलावा अन्य द्रव्य कोई हो ही नहीं सकता। तब ६ द्रव्योकी व्यवस्था करनेके लिए स्वरूप और पररूप ये न मिल सकेंगे। इसपर उत्तर देते हैं कि उनकी भी सिद्धि यों है कि शुद्ध सत् द्रव्य की अपेक्षासे तो अस्तित्व है और पररूपसे याने अशुद्ध असत् द्रव्यकी अपेक्षा नास्तित्व है। यहाँ प्रश्न यह किया गया था कि जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश, काल आदि जो ६ द्रव्य हैं, इनका स्वद्रव्य क्या है? और परद्रव्य क्या है? अथवा ७ तत्त्व हैं—जीव,अजीव, आश्रव, बंध आदिक। इनका स्वरूप क्या और पररूप क्या? इसपर उत्तर यह दिया गया कि इन ६ द्रव्योंका शुद्ध सत् द्रव्यकी अपेक्षासे तो अस्तित्व है और अशुद्ध असत द्रव्यकी अपेक्षासे नास्तित्व सिद्ध है। याने ६ द्रव्योका जो शुद्ध सत द्रव्य है वह तो स्वरूप है और आगे जो अशुद्ध है, असत है ऐसा कुछ भी है वह परद्रव्य है, उसकी अपेक्षासे ६ द्रव्योमें नास्तित्व युक्तिपूर्वक सिद्ध है।

महासत्ताके स्वरूप पररूपका विचार—

अब यहाँ शङ्काकार पूछता है कि यही बतलावो कि महासत्त्व रूप शुद्धद्रव्यका स्वरूप क्या और पररूप क्या? क्योकि महासत्ता तो समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है। समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको छोडकर अन्य द्रव्यादिक नही रह सकता, फिर वहाँ तो परद्रव्य कुछ मिलेगा नही। उत्तरमे कहते हैं कि यह बात नही है।

महासत्ताका भी सकल द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिककी अपेक्षासे सत्त्व है और विकल द्रव्यादिककी अपेक्षासे असत्व है याने महासत्ता समस्त द्रव्योंमे व्यापक है ना ! तो समस्त द्रव्योमे व्यापक रूपमे तो महासत्ताका सत्त्व है और कुछ द्रव्यादिकमे रहे इस रूपसे असत्व है, क्योकि महासत्वका यह स्वरूप ही नही कि वह कुछ पदार्थोंमे रह जाय और कुछमे न रहे। तो महासत्वके सम्बन्धमे भी स्वरूप और पररूप सिद्ध होते हैं, क्योकि कहा गया है कि सत्ता भी प्रतिपक्षसहित होती है। इस तरह महासत्वका वर्णन किया है और उसका स्वरूप पररूप बताया है।

आकाशके स्वरूप पररूपका विचार—

क्ष

महासत्ताके वर्णनसे आकाशको भी समझ लें ! समस्त क्षेत्र, कालमे रहने वाला जो आकाश है उसका भी स्वरूप पररूप जान लेना चाहिए अर्थात् समस्त काल, क्षेत्रकी अपेक्षासे आकाशका सत्व है और कुछ थोडे क्षेत्र, कालकी अपेक्षासे आकाशमे असत्व है। जिसका भाव यह है कि आकाश तो सदाकाल रहता है और सब क्षेत्रोमे रहता है। ऐसा नही है कि आकाश कुछ क्षेत्रमे रहे और कुछ कालमे। तो कुछ क्षेत्र कालमे रहना जब आकाशका स्वरूप ही नही तो उसकी अपेक्षासे वह सत्त्व नही हो सकता। यो आकाशमे भी स्वद्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सत्त्व और पररूपकी अपेक्षासे असत्त्व सिद्ध होता है। यो किसी भी तत्वका वर्णन करते जायें, जो विवक्षित है, जो द्रष्टव्य है वह तो है स्वरूप और उससे इतर जो कुछ है वह है पररूप। यो स्वरूपसे सत्त्व और पररूपसे नास्तित्वकी व्यवस्था बराबर सर्वत्र बनती है और स्वरूप मे स्वरूपान्तर भी माना जाता है। स्वरूपका निर्णय करने जब चलेंगे तो वहाँ भी कोई स्वरूप और कोई पररूप बनेगा ही। यो सप्तभङ्गीमे स्वरूपसे अस्तित्त्वकी सिद्धि है और पररूपसे नास्तित्व सिद्ध है और उसीके आधार पर ७ भङ्गकी निष्पत्ति होती है।

अस्तित्वकी तरह नास्तित्वकी वस्तुस्वरूपताका वर्णन—

क्ष

यहाँ शकाकार कहता है कि वस्तुका स्वरूप तो अस्तित्व ही है। नास्तित्व वस्तुका स्वरूप नहीं हो सकता, क्योकि नास्तित्व पर रूपके आश्रय है। पररूपसे नास्तित्व बताया गया है तो उसमे आश्रय पररूपका ही हुआ। यदि पररूपके आश्रित रहने वाला भी नास्तित्व वस्तुका स्वरूप मान लिया जाय तो पटमे प्राप्त हुए रुपादिक भी घटका स्वरूप बन जायेंगे। फिर तो वस्तुकी व्यवस्था न रहेगी। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि यह कहना युक्त नही है कि वस्तुका स्वरूप नास्तित्व नही, क्योकि वस्तुमें अस्तित्व और नास्तित्व दोनोके ही स्वरूप रूप माननेमें प्रमाण मौजूद

है। देखिये घटके स्वरूपादिकसे सहित अस्तित्व जैसे प्रत्यक्षमे ग्रहणमे आता है। मायने घट अपने स्वरूपसे सहित है यह बात जैसे स्पष्ट विदित है इसी प्रकार पर-रूपादिकसे सहित नास्तित्व भी घटमे प्रत्यक्षमे ग्रहणमें आता है। अर्थात् यह भी विदित हो रहा है कि घटमे पररूपका नास्तित्व है। जैसे घट घटत्वेन अस्ति, घट घटरूपसे है, यह प्रतीति अबाधित है उसी प्रकार घट पटरूपसे नही है, यह भी प्रतीति निर्बाध हो रही है।

अनुमान प्रयोगसे नास्तित्वकी वस्तुस्वरूपताका समर्थन–

❀

अस्तित्वकी तरह नास्तित्व भी वस्तुका स्वरूप है, इस विषयमे अनुमानका प्रयोग करके समझा जा सकता है कि अस्तित्व और नास्तित्व ये वस्तुके स्वरूप हैं। प्रयोग है अस्तित्व स्वभाव नास्तित्व स्वभावमे अविनाभूत है विशेषण होनेसे, साधर्म्यकी तरह। जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्यसे अविनाभूत है उसी प्रकार अस्तित्व भी नास्तित्वसे अविनाभूत है। जैसे कि अस्तित्व स्वभाव है ऐसे ही नास्तित्व भी स्वभाव है। जैसे साधर्म्य वैधर्म्यसे अविनाभूत है अर्थात् साधर्म्य कोई चीज है तब जब कि वह वैधर्म्य भी कुछ चीज है। अविनाभूतका अर्थ है कि एक अधिकरणमें रहना। यह न हो तो यह न रहे, ऐसे नियमपूर्वक एक आधारमे रहनेका नाम है अविनाभूत-पना। इस प्रयोगसे भी सिद्ध होता है कि घटका अस्तित्व किसी नास्तित्वसे अविना-भूत है तब जैसे अस्तित्व घटका स्वरूप है ऐसे ही नास्तित्व भी घटका स्वरूप है।

वैधर्म्यके विना साधर्म्य हो सकनेके कारण नास्तित्वके वस्तुस्वरूपसमर्थ-नार्थ प्रयुक्त अनुमानमे दृष्टान्तकी अयुक्तताकी शका—

❀

यहां शकाकार कहता है कि यह बात तो युक्त नही जची कि जैसे साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत होता है उसी प्रकार अस्तित्व भी नास्तित्वसे अविनाभूत होता है क्यो कि कही कही वैधर्म्य न भी हो तो भी साधर्म्य दिख जाता है। देखो यह एक प्रयोग है कि घट अभिधेय है अर्थात् कथन किया जाने योग्य है क्योकि प्रमेयत्व धर्म होनेसे। घट अभिधेय प्रमेयत्वात् अब इस अनुमानमे देखिये—जहा प्रमेत्वादिक हेतु है वहा वैधर्मके अभावमें साधर्म है। प्रमेयत्व कहनेसे सभी चीजें तो आ गयीं। जगतमे जो भी प्रमेय हैं वे सब सत् हैं। अब वैधर्म्य तो तब आता कि जो प्रमेयत्व न हो उसे भी ग्रहण करता, पर प्रमेयत्व न हो उसका ग्रहण तो नही होता। तो साधर्म्य वैधर्म्यका साहचर्य तो न रहा। तब साधर्म्य वैधर्म्यके सदृश अस्तित्व नास्तित्वका अविनाभूत है यो कहना अयुक्त है। प्रकृत विषय था कि अस्तित्व नास्तित्वसे अवि-नाभूत है और उसके लिए दृष्टान्त दिया—जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्यसे अविनाभूत है

लेकिन साधर्म्य तो वैधर्म्यसे व्याप्त न रहा। तब उसका दृष्टान्त देकर अस्तित्वका नास्तित्वसे व्याप्त सिद्ध करना अयुक्त है। स्पष्ट अर्थ इसका यह है कि प्रमेय सब पदार्थ हैं। तो जहा प्रमेयत्व सब पदार्थ है। तो जहा प्रमेयत्व है वहा प्रमेयत्वका अभाव तो न मिला और जो प्रमेय नही वह अवस्तु है उसका नाम ही क्या। तो देखिये—जब अभावका हेतु कही न मिला, जो है वह सब प्रमेय है जो नही है उसका ग्रहण क्या ? तो जब वैधर्म्य न मिल सकेगा तो उसके बिना साधर्म्य तो हो गया। तब यह दृष्टान्त देना युक्त नही है।

नास्तित्वके वस्तुस्वरूपसमर्थनार्थ प्रयुक्त अनुमानमे प्रदत्त दृष्टान्तकी युक्तता का समाधान—

❀

अत्र उक्त शकाका उत्तर सुनिये ! साधर्म्यके अधिकरणभूत आधारमे जिसका रहना निश्चित हो उसको साधर्म्य कहते हैं पहिले साधर्म्य वैधर्म्यका स्वरूप निश्चित कीजिए ! साधर्म्य किसे कहते हैं ? साध्यके सद्भावके अधिकरणमें रहनेको साधर्म्य कहते हैं। और, साध्यके अभावका अधिकरणमे रहने रूपसे जो निश्चित हो उसे वैधर्म्य कहते हैं। अब दृष्टान्तसे सम्बन्धित अनुमान जो शकाकारने लिया, उसमे साध्य है अभिधेयपन। किया था ना अनुमान कि घट अभिधेय है प्रमेयत्व होनेसे। तो यहा साध्य है अभिधेयपन उसके अभावका अधिकरण हैं खरगोशके सीग आदिक अर्थात् जहा प्रमेयपना न हो ऐसी बात कह रहे है। खरगोशके सीग नही है और उसमे प्रमेयत्वकी वृत्ति भी नही है। साध्यके अभावमे साधनका न होना, यही बात तो वैधर्म्यमे घटायी जायगी। तो देख लीजिए, खरगोशके सीग अभिधेय भी नही और प्रमेय भी नही तब वैधर्म्य कैसे न मिला ? खरगोशके सीग अवस्तु होनेसे अभिधेय नही हो सकते और अवस्तु होनेसे प्रमेय भी नही हो सकते। तो इस अनुमानमे भी वैधर्म्य मौजूद है अतएव दृष्टान्त अयोग्य न रहा।

नास्तित्वकी अस्तित्वसे अविनाभूतताका कथन—

❀

नास्तित्व भी अस्तित्व शब्दसे अविनाभूत है विशेषण होनेसे, वैधर्म्यकी तरह। इस अनुमानसे भी अस्तित्व और नास्तित्वके अविनाभूतकी सिद्धि होती है। स्वरूपसे अस्तित्व होना, पररूपसे नास्तित्व हुए बिना नही हो सकता। पररूपसे नास्तित्व होना स्वरूपसे अस्तित्व हुए बिना नही हो सकता। अतएव यह कहना कि वस्तुका स्वरूप अस्तित्व ही है नास्तित्व नही है यह बात अयुक्त है। पट आदिक के नास्तित्वका आधार तो घटमे बनाया गया है। घटमें पटका नास्तित्व है। तो पटका नास्तित्व घटके आश्रित हुआ, न कि पररूपके आश्रित हुआ। तो जैसे अस्तित्व

वस्तुका स्वरूप है इसी प्रकार नास्तित्व भी वस्तुका स्वरूप है । अब शंकाकार कहता है कि इसलिए ! एक यह अनुमान बनाया गया कि पृथ्वी जल आदिकसे भिन्न है गंधवान् होनेसे । एक सिद्धान्तमें पृथ्वीको गंधवान माना है, जलको रसवान माना है और अग्निको रूपवान माना है । इस सिद्धान्तके अनुसार चूंकि पृथ्वी गंधवान है और गंध जलादिकमें नहीं है अतएव जलादिकसे भिन्न पृथ्वी सिद्ध होती है । तो पृथ्वी जलादिकसे भिन्न सिद्ध होती है गंधवान होनेसे, इस अनुमानमें जो जो हेतु दिया गया है वह केवल व्यतिरेकी है अर्थात् इसके उदाहरणमें वैधर्म्य तो मान लिया जायगा, जहाँ जिसमें साध्य नहीं, साधन नहीं ऐसा दृष्टान्त तो मिल जायगा, पर साधर्म्य न मिलेगा । क्योंकि पृथ्वीमें तो सब पृथ्वी आ गई और पृथ्वी ही गंधवान है । अब और चीज अगर उदाहरणके लिए मिले कि जिसमें साधर्म्य मिल सके तो अनुमान ठीक हो, लेकिन ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है । अब इस केवल व्यतिरेकी हेतुमें वैधर्म्य तो मिलेगा पर साधर्म्य न मिलेगा । अब यह भी दृष्टान्त देना कि नास्तित्व अस्तित्वका अविनाभावी है जैसे कि वैधर्म्यकी तरह, यह दृष्टान्त युक्त नहीं बैठता । अब उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि केवल व्यतिरेकी हेतुमें भी साधर्म्यपना घटादिकमें सम्भव ही है । जो अनुमान बनाया गया है कि पृथ्वी जला-दिकसे भिन्न है गंधवान होनेसे इस हेतुमें भी साधर्म्य मिल जायगा घटकी तरह पृथ्वी जल आदिकसे भिन्न है गंधवान होनेसे । जैसे कि घट । यह साधर्म्य कैसे मिल गया कि साधर्म्यके लिए यह नियम नहीं बन सकता कि जो पक्षसे भिन्न हो, वही साधर्म्य हो, पक्ष नहीं हो । साधर्म्यके लिए तो इतना देखना है यहाँ कि जलादिकसे भेदका अधिकरण होना चाहिए । माने जो जलादिकसे भिन्न हो। बस वह साधर्म्य बन जायगा । जो साध्यका अधिकरण हो, जहाँ साध्यके सद्भाव पाये जायें वे सब साध-र्म्य कहलाते हैं । तो यहाँ साध्य बनाया गया है जलादिकसे भिन्न होना तो जलादिक से भिन्न होनेका अधिकरण तो घट भी है और यहाँ गंधवत्त्व हेतु निश्चित रूपसे पाया जा रहा है । इसलिए साधर्म्य तो बराबर सही बन रहा है, ऐसा नहीं कह सकते कि यहाँ वैधर्म्य साधर्म्यके बिना रह गया । तो जैसे वैधर्म्य साधर्म्यसे अविना-भूत है इसी प्रकार नास्तित्व भी अस्तित्व स्वभावसे अविनाभूत है । अतः यह नहीं कह सकते कि वस्तुका अस्तित्व ही स्वरूप हुआ, नास्तित्व न हुआ या नास्तित्व ही स्वरूप हुआ अस्तित्व न हुआ ।

नास्तित्वका अस्तित्वसे अविनाभूत होनेके सम्बन्धमें शङ्का व समाधान—

❀

अब शंकाकार कहता है कि आपका यह कथन कि नास्तित्व अस्तित्वके बिना नहीं हो सकता, अयुक्त है क्योंकि हम आपको ऐसा उदाहरण देंगे कि जहाँ नास्तित्व है और अस्तित्व नहीं है । जैसे खरगोशके सींग, आकाशके फूल, मेंढककी चोटी तो

बतलाओ ! यहाँ अस्तित्व कहाँ ? नास्तित्व ही तो है। तो इन दृष्टान्तोमे अस्तित्वके बिना भी नास्तित्व देखा गया, फिर यह व्याप्ति कैसे बनाई जा सकती है कि नास्तित्व अस्तित्वका अविनाभावी है या अस्तित्व नास्तित्वका अविनाभूत है ? इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि भाई, खरगोश वगैरहके सीग भी जो उदाहरणमे बताये हैं वहाँ भी अस्तित्व सिद्ध हो सकता है। खरगोशके सीगका नास्तित्व अस्तित्वका अविनाभूत है, वह किस प्रकार ? सो सुनो ! देखिये, सीग तो प्रसिद्ध है ही। अब जो सीग गायके मस्तकमे समवाय रूपसे है अर्थात् गायके तो सीग है ना, और वह सीग गायके मस्तक मे समवायरूपसे है। याने सभी मिलकर तो वह मस्तक है और वही वह सीग है। तो जो सीग गायके मस्तकमे समवायरूपसे प्रसिद्ध है वही सीग खरगोश आदिकके मस्तक मे समवायरूपसे नहीं है, यह निश्चित् हो जाता है ना ? तो देखो ! उस ही का अस्तित्व बन गया, नास्तित्व बन गया। जैसे कि कछुवाके रोम। कछुवाके रोम तो नही होते, लेकिन स्याद्वाद विधिसे यहाँ भी परखिये कि नास्तित्व भी अस्तित्वका अविनाभूत है। मेढक आदिकके समवायरुपसे जो रोम होना प्रसिद्ध है वह रोम कछुवा आदिकके समवायरूपसे नही है, यह बात तो मानोगे ना ? तो देखिये ! नास्तित्व अस्तित्वसे अविनाभूत बन गया अथवा जैसे आक्षेपमे कहा गया था कि आकाशके फूलमे कैसे नास्तित्व अस्तित्वसे अविनाभूत रहा ? सो सुनो ! वहाँपर भी यह बात है कि जो फूलपना वनस्पतिके सम्बन्धी रूपसे प्रसिद्ध है वह ही फूल आकाशके सम्बन्धी रूपसे नही है। तो देखो ! उसमे भी नास्तित्व और अस्तित्वसे अविनाभावी बन गया तो यो यह बात प्रकट सिद्ध है कि अस्तित्व और नास्तित्व परस्परमे अविनाभूत होकर ही रहा करते हैं। अतएव वस्तुका जैसा अस्तित्व स्वरूप है उस ही प्रकार नास्तित्व भी स्वरूप है।

नास्तित्वका अस्तित्वसे अविनाभूत होनेके सम्बन्धमे अन्यवाद--

❀

अन्यवादीजन इस सम्बन्धमे ऐसा विचार रखते हैं कि जैसे देवदत्त आदिक शब्द बोला तो देवदत्त शब्दमे शक्ति क्या है ? अर्थात् देवदत्त कहनेसे किसका बोध हुआ है ? तो वह बोध हुआ है देवदत्तके शरीरमे सहित आत्माका। तो देवदत्त कहने से आत्माका ज्ञान किया गया। कहते भी हैं ऐसा कि देवदत्त जानता है, देवदत्त सुख का अनुभव करता है। इससे सिद्ध है कि देवदत्त शब्द कहकर देवदत्तके आत्माका बोध किया जाता है। इसी प्रकार मेढक आदिक शब्द बोलते हैं तो उससे किसका बोध हुआ ? मेढक आदिकके शरीरमे रहने वाले आत्माका बोध हुआ। तो इस तरह कर्मके आदेशवश नाना जाति सम्बन्धको प्राप्त हुए जीवका जब यह जीव मेंढककी पर्यायमे था तब मेढक कहकर उस पर्यायके जीवका ग्रहण किया और मानो वही मेढकका जीव मरकर स्त्री बन गया तो स्त्रीकी पर्यायमे तो बडी लम्बी चोटी होती

है। अगर यह कहा जाय कि यह मेढककी चोटी है तो ऐसा कथचित् कह सकते हैं अर्थात् जो स्त्री पर्यायमे जीव है वह जीव पहिले मेढक पर्यायमे था तो मेढक कहकर उस जीवको लिया और चोटी कहकर स्त्री भावकी चोटीको लिया तब यह कह सकते हैं कि यह मेढककी चोटी है। तो प्रत्यभिज्ञानका विषयभूत एक जीव है और एक जीवका ही सम्बन्ध है। मेढक भी वही था और स्त्री भी वही बना तब जब स्त्रीकी चोटीका उपचार मेढकके साथ लगाया गया तो देखो अगर कोई यह कह दे कि मेढककी चोटी, तो इसका भी अस्तित्व बन गया। मेढकके शरीरमे सहित आत्मा को मेढकके शरीरके सनानकालमे यद्यपि चोटी नही है उसका वहा नास्तित्व है मगर वह जीव जब स्त्री पर्यायमें आया तो उसके चोटी हुई यो कथचित् मेंढककी चोटीका अस्तित्व है। अब नास्तित्वकी बात सुनिये! कोई जीव स्त्री था तब चोटी थी अब वही मेंढक बना तो अब तो चोटी नही है अब इस कालकी अपेक्षासे कहिय मेढकके चोटीका नास्तित्व।

प्राणीनामसे शरीर वाच्य मानकर भी नास्तित्वका अस्तित्वसे अविनाभावी होनेके उदाहरण—

❀

यदि देवदत्त आदिक शब्द मडूक आदिक शब्द उस शरीरके वाचक माने जायें जीवके बोधक न माने-क्योकि व्यवहार भी ऐसा होता है कि देवदत्त उत्पन्न हुआ और देवदत्त नष्ट हुआ तो वह ही देवदत्त वधके प्रति एक रूपसे व्यवधान होनेमे जीवका बोधक होता है। लेकिन यहाँ देवदत्तादि शब्दसे शरीर वाच्य मानकर सुनिये! अब देखिये, कि मेढकका शरीर जब गुजर गया और मेढकका शरीर मिट्टीमे मिल गया और वे ही परमाणु किसी वृक्षमे आ गए और वृक्षोके फलोंका मानो स्त्रीने आहार किया और उसके ही परमाणु चोटीरूप बन गए तो कह सकते ना कि मेढककी चोटी यदि मडूक शब्द कहकर जीवका बोध करेंगे तो भी मडूककी चोटी, यह बात बन जाती है। और, मडूक शब्द कहकर यदि शरीरका बोध करेंगे तो मडूककी चोटी, वहाँ भी यह अर्थ बन जाता है। तो यो वध्या पुत्र अथवा खरगोशके सीग, मनुष्यके सीग, गधाके सीग कछुवाके रोम इन सबका भी अस्तित्व कथचित् सिद्ध कर लिया जाता है। जैसे मानलो आज वध्या शरीरका धारी जीव है तो इस जन्ममे यद्यपि पुत्र नही है तो भी उसके शरीरके पुद्गलके अवयव ऐसे हैं कि जब उसके पुत्र हुआ था। तो उस दशाको लेकर वध्या पुत्रका अस्तित्व और वध्या दशामे पुत्रका नास्तित्व ये दोनो बातें सिद्ध होती हैं। इस प्रकार खरगोशके सीग यह भी कहा जा सकता। कोई जीव खरगोश था और मरकर गाय हुआ तो अब गायमें सीग आये। जीव है वही। तो खरगोशके सींग कहना यह बात युक्त हो सकती है। और मानो कोई गाय था तब तो सींग थे अब मरकर खरगोश हुआ तो इस समय सीग नही है सो वर्तमानमें यह

बात युक्त है कि खरगोशके सींगका नास्तित्व है, कोई जीव पहिले कछुवा था, अब वह मरकर मेढककी पर्यायमे आ गया है, अब उसके रोम हो गए हैं तो कछुवा कहकर लिया पहिलेका जीव और रोम हैं इस समय मेढककी अवस्थामे तो कह सकते कि ये कछुवाके रोम हैं। कोई कहे कि आकाशके फूलका अस्तित्व कैसे बनाओगे ? तो सुनो! जैसे जहाँ फूल है वहाँ पेड है और वही आकाश है तो जैसे पेडका फूल कहा जाता है ऐसे ही आकाशका फूल कहा जायगा क्योंकि पेडमे भी फूल है और आकाशमे भी फूल है। तो यह सब कथचित् दृष्टियोसे वर्णन चल रहा है। इन दृष्टियोसे कहा जा सकता है कि जो नही भी हैं उनका भी कथचित अस्तित्व है। यह सब प्रकरण इस बातपर चल रहा है कि शङ्काकारने यह कहा था कि अस्तित्व नास्तित्वसे अविनाभावी नही है, इस कारणसे साधर्म वैधर्म्यका दृष्टान्त देना अयुक्त है। तो सिद्ध किया गया कि जितना नास्तित्व है वह अस्तित्वसे अविनाभूत है और जितना अस्तित्व है वह नास्तित्वसे अविनाभूत है। इस ही प्रकरणको लेकर पहिले यह बताया गया था कि जैसे घट घटरूपसे है किन्तु पटरूपसे नही है। तो यहाँ घटका अस्तित्व पटके नास्तित्व से अविनाभूत हो गया। अब यह कहा जा रहा है कि जो नास्तित्व है वह नास्तित्व भी अस्तित्वका अविनाभूत है। जैसे खरगोशके सींग इनका भी कथचित अस्तित्व है अथवा कछुवाके रोम, इनका भी कथचित अस्तित्व है, तो यह नास्तित्व अस्तित्वका अविनाभाव है।

लतापुष्प व आकाशपुष्पके शब्दोपर कुछ चर्चायें—

❀

अब यहाँ कोई शङ्का करता है कि जैसे वेलाकी लतासे जो फूल उत्पन्न होता है उसे वेलाका फूल कहते हैं, क्योकि वेलाकी लताकी जडोसे जलका आहरण हुआ, उससे उसका शरीर वृद्ध हुआ, उससे पुष्प निकले, पुष्पको आहार मिला, इस उपयोग से उसे कह सकते हैं कि यह वेलाका फूल है, मगर आकाशका फूल यह कैसे कहा जायगा ? तो कथचित् आकाशके फूलका अस्तित्व बताते हैं। अत कह रहे हैं कि आकाश भी सब कार्योंमे अवकाश चूकि दे रहा है तो कुछ उपकार उसका भी है तो उसमे आकाशका कारण है। और, जब पुष्प अपनेमे उत्पन्न हुआ अथवा अपनेमे बढा ता उस समय उसको साधन भी दिया गया। इस लिए आकाशका फूल ऐसा व्यवहार भी कह सकते हैं। शङ्काकार यदि यह कहे कि आकाशकी अपेक्षासे फूल तो बिल्कुल भिन्न पदार्थ है इसलिए आकाशका फूल यह व्यवहार नही हो सकता। तो इसका उत्तर यह है कि आकाशकी अपेक्षा फूलका कथचित् भिन्न कहा या सर्वथा ? यदि कथचित् भिन्न कहते तो जैसे आकाशका फूल यह व्यवहार नही करते ऐसे ही वेलाका फूल यह भी व्यवहार नही होता क्योकि वेला लताकी अपेक्षासे फूल भी कथचित भिन्न है और यदि कहा कि सर्वथा भिन्न है तो जैसे सर्वथा फूलको आकाशसे भिन्न माना तो सर्वथा

आकाशसे भिन्न है ही नहीं। देखो! द्रव्यत्वकी अपेक्षा आकाश भी द्रव्य फूल भी द्रव्य, उसमे अभेद है तो इस तरह कथंचित आकाशका फूल ऐसा भी कहा जा सकता है। प्रयोजन यह है कि नास्तित्व अस्तित्वमे अविनाभूत है। भले ही कोई पदार्थ अत्यन्ताभावरूप है लेकिन उस अत्यता भाव याने पदार्थका भी किसी न किसीरूपमे अस्तित्व का बोध होता ही है। यो नास्तित्व अस्तित्वका अविनाभाव है।

अस्तिशब्द वाच्यार्थसे जीवशब्द वाच्यार्थको भिन्न अथवा अभिन्न माननेमें शकाकार द्वारा आपत्तिका प्रदर्शन—

❀

यहाँ शकाकार कहता है कि अब प्रकृत बातपर आइये! जैसे कहा—'अस्ति एव जीव'। इसमे अस्ति मायने कथंचित् है इस वाक्यमे अस्ति शब्दका वाच्य तो हुआ सत्त्व और जीव शब्दका वाच्य भी हुआ कोई अर्थ। सो इन दोनोका वाच्य भिन्न स्वभाव वाला है अथवा अभिन्न स्वभाव वाला है? यदि दूसरा पक्ष मानते कि भिन्न स्वभाव है याने अस्तित्वका वाच्य अर्थ दूसरा है और जीवका वाच्य अर्थ दूसरा है तब तो वाक्य न बना, सम्बन्ध न बना, जीवका असत्त्व भी हो गया। यदि अभिन्नता स्वीकार करते तो एक शब्द कुछ भी बोला अन्य शब्द बोलना व्यर्थ है क्योंकि अस्ति शब्दसे भी जीव जाना गया और जीव शब्दसे अस्ति जाना गया, अब अस्ति और जीव मे किसी प्रकारका भेद न रहा। तो भेद मानते हो तब भी बात नहीं बनती, अभेद मानते हो तब भी बात नही बनती। अभेद होनेसे तो समानाधिकरण न बनेगा। विशेष्यविशेषणभाव भी न बनेगा, क्योकि अभिन्नमे ये दोनो बातें नहीं होती। एक आधारमे रहनेवाली बात न बनेगी, क्योकि वे दोनो एक हैं। क्या घट और कलशमे समानाधिकरण्य व विशेष्यविशेषणभाव हो सकता है? एक माननेसे भी न बनेगा, भेद माननेसे भी न बनेगा। इसी प्रकार दोनो ही दिशाओंमे विशेष्य विशेषण भाव न बनेगा। जब जीव अस्ति इनमें जीव और अस्तिका परस्परमे सम्बन्ध क्या है? सो बताओ! यह एक इस प्रकरणमे अतिक प्रश्न है। सप्तभङ्गोमेसे यह प्रथम और द्वितीय भङ्गका स्वरूप चल रहा है। घटमे स्याद् अस्ति एव घट स्याद् नास्ति एव, इसमे सब बातें बतलाकर अन्तमें यह पूछा जा रहा है कि अस्ति शब्दसे क्या ग्रहणमे आया? और जीव शब्दसे क्या ग्रहणमे आया? अगर अस्ति शब्दसे भी जीव ग्रहणमे आये और जीव शब्दसे भी अस्ति ग्रहणमें आये तब तो दो प्रयोग करना अनर्थक है और यदि ये भिन्न-भिन्न अर्थके वाचक हैं, अस्ति किसी अन्य अर्थको कहता है और जीव यह किसी अन्य अर्थको कहता है तब तो जीव असत् होगा, क्योकि वह अस्ति नहीं, इसमें किसी प्रकारका सम्बन्ध भी नहीं बन सकता। जैसे घट कलश आदिक एक अर्थके वाचक शब्दोका समानाधिकरण और विशेष्य विशेषण भाव नही होता, ऐसे ही जीव और अस्ति शब्दका भी सामानाधिकरण्य और विशेष्य विशेषण भाव न

और अभेद है, यह बात अच्छी तरहसे प्रतीत होती है इस बातका आगे स्पष्टरूपसे निरूपण करेंगे ही, किन्तु यहां इतना निर्णय कर लेना कि अभिन्न जीव इसमें जो जीव के अस्तिकी बात कही गई है वह बराबर प्रतीति सिद्ध है। यहा तक सप्तभङ्गोमे जो प्रथम दो भङ्ग कहे गए हैं—स्याद अस्ति एव, स्यादनास्ति एव, इन दोनों भङ्गोका भली प्रकारसे वर्णन किया गया। अब आगे तृतीय भङ्गके सम्बन्धमे निरूपण करेंगे।

तृतीय भगके विवरणका उपक्रम –

तीसरा भङ्ग है घट स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति, घट कथचित् है और कथचित् नहीं है। यहा दो धर्मोको घटरूप धर्मीमे क्रमसे अर्पित किया गया है। इस तृतीय भङ्गका अर्थ यह हुआ कि घटरूप एक धर्मीको विशेष्य मानकर उसमे क्रमसे अर्पित विधि और प्रतिपेधके प्रकारका बोध उत्पन्न कराया गया है। जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि क्रमसे अर्पित स्वरूपकी अपेक्षासे अस्ति और पररूपकी अपेक्षासे नास्ति, इन दोनों बातोंसे तन्मय यह घट है ऐसा अर्थ समझना चाहिए। जिस ज्ञानमे पदार्थ तो विशेष्य होवे और क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्व विशेषण होवे ऐसे ज्ञानका जनक वाक्य तृतीय भङ्ग है।

चतुर्थ भङ्गके विवरणका उपक्रम—

❀

अब चतुर्थ भङ्गकी बात सुनो! एक साथ स्वरूप और पररूपकी विवक्षा बनायी जाय तो उसमे स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति इन किन्हीं भी शब्दोमे नही कहा जा सकता। अतएव वहा स्याद् अवक्तव्य घट है यह चौथा भङ्ग बनता है। इस चौथे भङ्गका भाव यह है कि यहा पदार्थ तो विशेष्य बना और अवक्तव्यपना विशेषण है। ऐसे बोधके जनक वाक्यको चतुर्थ भङ्गका लक्षण कहा गया है। याने जिस ज्ञानमे कोई पदार्थ तो विशेष्य हुआ और अवक्तव्यपना विशेषण हुआ, उस ज्ञानको उत्पन्न करने वाला वाक्य चतुर्थ भङ्ग है इसी प्रकारसे कथचित अवक्तव्यपनेका आश्रयभूत घट है इस चतुर्थ भङ्गसे यह ज्ञान होता है। सीधे शब्दोंमे इसे यो कह लीजिए कि जब द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे यह बताया गया कि यह घट है तो पर्यायार्थिक अथवा भेददृष्टिसे पररूपकी अपेक्षासे यह बताया गया कि घट कथचित् नहीं है तो इन दो बातोको सुनकर कोई यह जिज्ञासा करे तो वास्तवमें बात है क्या, एक शब्दमे बताओ? तो वहा उत्तर आयगा कि स्यात् अवक्तव्य है घट।

घटकी अवक्तव्यताके सम्बन्धमे शङ्का और समाधान—

❀

अब यहाँ शकाकार कहता है कि घटको अवक्तव्य कैसे कह दिया ? क्योकि किसी न किसी रीतिसे सभी पदार्थ कहे ही जाते हैं। घट अवक्तव्य है, चलो इस रूप से घटकी ही बात कही। तो अवक्तव्य कैसे हो गया ? इस शकाके उत्तरमे कहते हैं सभी शब्द एक कालमे ही प्रधानतासे सत्त्व और असत्त्व दोनोका प्रतिपादन नही कर सकते। शब्दमे ऐसी शक्ति ही नही है कि एक कालमे प्रधानतासे सत्त्व और प्रधानतासे असत्त्व दोनोको प्रकट करदे। एक कालकी प्रधानतासे एक ही पदार्थका शब्द विषय बना है इसलिए एक पदार्थकी शक्ति एक ही पदार्थका विषय करने वाला सिद्ध होता है। यद्यपि कोई शब्द ऐसे भी होते कि जिनके अर्थ कई हो। जैसे सैंधव शब्दके दो अर्थ हैं—नमक और घोडा। तथापि एक कालमे एक वातावरणमे एक ही अर्थ होगा, किसी पुरुषने जैसे भोजनके समय यह कहा कि सैंधव लाओ तो उस समय तो सैंधव का अर्थ नमक ही है, न कि नमक और घोडा दोनो अर्थ बन गए। यदि वक्ताको दोनो ही चीजोकी जरूरत होती तो वहा केवल सैंधवका प्रयोग न करके सैंधव लाओ और घोडा लाओ। दोनोको लाओ। ऐसा कहता, मतलब यह है कि एक बार उच्चारण किया हुआ शब्द एक ही अर्थको ध्वनित करता है तो शब्दमे ऐसी सामर्थ्य नही है कि एक ही कालमे वह सत्त्व और असत्त्व दोनोको प्रधानतासे वर्णन करदे। जैसे अस्ति, यह पद सत्तारूप अर्थको ही कहता है न कि असत्त्व रूप अर्थको ऐसे ही नास्ति, यह पद असत्त्व रूप अर्थको ही जताता है न कि सत्त्वरूप अर्थको। यदि अस्ति आदिकमेसे एक ही पद सत्त्व और असत्त्व दोनोका वाचक बन जाय तब फिर दोनोका प्रयोग करनेकी आवश्यकता ही क्या है ?, एकका ही प्रयोग करें एकका न करें। जब एक ही पदसे सत्त्वको जान लिया, असत्त्वका भी जान लिया तो वहा दोनोके निरूपणकी भी क्या आवश्यकता है ? पर आवश्यकता है उन दोनोसे जुदे-जुदे अर्थका लोगोको बोध होता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि एक शब्द व पद एक कालमे प्रधानतासे एक ही अर्थको कह सकता है। तो जब शब्दोमे यह शक्ति है वह एक ही कालमे बतायेगा। तो कोई शब्द ऐसा नही होता कि जो सत्त्व और असत्त्व दोनोका प्रधानतासे एक कालमे वर्णन करदे। इसी कारण स्याद अवक्तव्य नामका चतुर्थ भङ्ग होना ही पडा।

एकपदकी एकार्थवाचकताके नियममे शका व उसका समाधान—

❀

अब शकाकार कहता है कि सभी एक ही अर्थके वाचक होते हैं अनेक अर्थके वाचक होते हैं, अनेक अर्थके नही। यदि ऐसा नियम मान लोगे तो नाना अर्थोके वाचक जो शब्द हैं उनका फिर उच्छेद हो जायगा। फिर तो कोई शब्द भी ऐसा न कहलायेगा कि जो नाना अर्थोका बोध कराये लेकिन, कोपमे ऐसे अनेक शब्द हैं जो अनेक अर्थोके बोधक होते हैं। इसके उत्तरमे कहते हैं कि ऐसी भी शका न कीजिए।

जहाँ कोई शब्द जितने अनेक अर्थोंका बोधक है तो वहाँ उतने ही शब्द समझ लेना चाहिए। जैसे गौ शब्दको पशु, पृथ्वी, किरण, स्वर्ग आदिक अनेक अर्थोंके वाचक रूप से बताया गया है, तो समझिये कि वह गौ शब्द भी यथार्थमे अनेक ही हैं लेकिन एक प्रकारका उच्चारण है उनका, इस समानतासे उनके एकत्वका व्यवहार है लोकमे। मतलब गौ एक सा उच्चारण हो रहा, मगर जितने अर्थोंका यह प्रतिपादक है उतनी तरहके विशेषणोंसे सहित शब्द है। यदि ऐसा न माना जाय तब तो सम्पूर्ण जगत एक ही शब्दसे वाच्य हो जायगा। फिर अनेक शब्दोंका प्रयोग करना ही व्यर्थ हो जायगा। शब्दके नातेसे सब शब्द एक हैं। शब्द समस्त पदार्थोंका जनक होगा। फिर किसी शब्दसे कुछ भी कह दिया जाय, कोई नियम न रह पायगा। और भी देखिये। समभिरूढनयकी अपेक्षासे जैसे शब्दभेदसे अर्थका भेद माना जा रहा है—शक्र, इन्द्र पुरन्दर ये तीन शब्द इन्द्रके पर्यायवाची शब्द हैं—चूं कि तीन शब्द हैं तो उस इन्द्रमें भी तीन अर्थ रख दिए गए। ऐसे ही अर्थके भेदसे शब्दभेद भी सिद्ध है। जिस शब्दके अर्थ अनेक हैं उन अर्थोंके भेदसे उस शब्दमे भी अनेक भेद मानने होंगे। यदि ऐसा न माना जाय अर्थात् अर्थके भेद होनेपर भी शब्दका भेद न माना जाय तो वाच्य वाचक का जो नियम है वह नियम न रह पायगा। याने शब्द तो वाचक है और जो पदार्थ कहा गया वह वाच्य है। जैसे गौ शब्दमे ग् और औ ये दो शब्द हैं। यह गौ पद गाय पशु अर्थको कहता है तो दूसरे पृथ्वी आदिक अर्थरूप वाच्यका वाचक दूसरा है गो शब्द समझा जाता है। अथवा वातावरण और प्रकरणके भेदसे एक समान उच्चारण मे आया हुआ भी शब्द भिन्न रूपसे परख लिया जाता है। यह सिद्ध हुआ कि एक शब्द एक साथ प्रधानतासे दो अर्थोंका प्रतिपादक नहीं हो सकता, इस कारण स्याद् अवक्तव्य ऐसा भङ्ग बोलना युक्त ही है।

एक पदकी एकार्थवाचकताकी भांति एक वाक्यकी एकार्थविषयताका निरूपण—

❀

जिस प्रकार शब्द एक ही अर्थका वाचक है अनेक अर्थका नही इसी तरह एक वाक्य एक साथ अनेक अर्थोंका विषय करने वाला नही होता। जैसे कहा स्याद अस्ति नास्ति एव घट अर्थात् स्वरूप चतुष्टयसे तो अस्तित्व और पररूप चतुष्टयसे नास्तित्व इन दोनो धर्मोंका क्रमसे विषय किया है और फिर उनका उपचारसे एकत्व स्वीकार किया है। याने दो धर्मोंकी बात क्रमसे कहकर उनको किसी एक सीमामे एक संख्याका रूप देना यह उपचारसे स्वीकार किया है। अथवा उनमे क्रमसे विवक्षित जो दोनोका प्राधान्य है वह एक वाक्य है। वह ही अस्ति और नास्ति शब्दसे कहा गया है। उस प्रकारके वाक्य एक अर्थके कहने वाले होते हैं। यो इनमे एक वाक्य-पना है। सभी वाक्य एक क्रिया प्रधान होनेसे एक अर्थको ही विषय किया करते हैं,

इस प्रसङ्गमे शङ्काकार कहता है कि भाई, सकेतके अनुसार ही तो शब्दोकी प्रवृत्ति होती है। अब एक कालमे सत्त्व और असत्त्व दोनो ही अर्थोका प्रतिपादक कोई शब्द बने, ऐसे सकेतका निर्णय करले तो देखो! उस सकेत से दोनोही अर्थोका बोध हो जायगा ना? जैसे कि व्याकरण शास्त्रामे एक सन् सज्ञा बताई गई है। कृदन्तके प्रकरणमें जहा शतृ और शानच दो प्रत्ययका विधान बनाया है तो दोनो प्रत्ययोका सकेत एक सन् शब्दमे किया गया है। इससे जाहिर होता है कि एक शब्द कई अर्थोका सकेत कर सकने वाला भी माना गया है तब इसी प्रकार एक शब्द कोई सोच लीजिए जैसा कि जो स्याद् अस्ति और स्याद् नास्ति इन दोनो का बोधक हो जायगा। शतृ और शानच ये जो दो प्रत्यय होते हैं तो यो समझिये कि परस्मैपदी धातुमे शतृ प्रत्यय जुड जाता है, जिससे भवन् गच्छन् आदिक रूप बनते हैं और आत्मनेपदी धातुमे शानच प्रत्यय जुड जाता है जिससे एधमान वर्द्धमान आदिक शब्द बनते हैं। अर्थ दोनो प्रत्ययोका एक है और दोनो प्रत्ययोका बोधक एक सन् शब्द बताया गया है। तो ऐसी पद्धति है कि कई अर्थोका सकेत करने वाला एक शब्द भी हुआ करता है। तो स्याद् अस्ति नास्ति इन दोनो धर्मोका प्रतिपादक कोई एक शब्दका सकेत कर लीजिए। तब यह बात न रही कि एक शब्द केवल एक ही अर्थका वाचक हुआ करता है। और, भी देखिये! चन्द्र और सूर्य दोनोका एक साथ बोध होवे उसके लिए एक सकेत शब्द दिया गया है पुष्पवन्त। पुष्पवन्त शब्दसे सूर्य और चन्द्रमा इन दोनोका एक साथ बोध होता है। तो उससे भी यह जाहिर है कि एक शब्द नाना अर्थोका वाचक हो सकता है। तब यह कहना युक्त नही है कि शब्द चू कि एक ही अर्थको कहते हैं अतएव स्याद् अस्ति, स्यादनास्ति, इन दोनोका एक साथ शब्द से प्रतिपादन न हो सकनेसे अवक्तव्य नामका चौथा भङ्ग बनाया गया है।

एक शब्दकी नानार्थ प्रतिपादनाशक्ति होनेसे अवक्तव्य भङ्गकी आवश्यकता का सयुक्तिक विवरण—

अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि देखिये! ऐसा सकेत भी बनता है, जो अनेक अर्थोका बोध कराये, लेकिन वह भी वाच्य वाचक शब्दके अनुसार ही बनता है। वाच्य वाचक शब्दका उल्लघन करके कही भी सकेतकी प्रवृत्ति नही देखी गई। इस बातको इस दृष्टान्तसे समझिये कि जैसे लोहेकी सलाई काठके छेदने और भेदने की सामर्थ्य रखती है, ऐसी वह लोहसलाई वज्रके छेदने भेदनेकी सामर्थ्य नही रखती। तब यह सिद्ध हुआ कि एक लोह काठके छेदने भेदनेकी शक्ति रखता है उसमे वज्रके लेखन काटनकी शक्ति नहीं है। और, जैसे उस लोह सलाईमें वज्रके लेखनेमे की अशक्ति है उस तरह काठके छेदन भेदनमे अशक्ति नही है। इस तरहसे भी देखो कि जैसे काष्ठमे यह सामर्थ्य है कि वह लोह लेखनी द्वारा लिखित हो जाय इस तरहकी

वज्रमे सामर्थ्य नही है कि वह लोह लेखनी द्वारा लिखित हो जाय और, जैसे वज्र मे लोह द्वारा लेख्य होनेकी अशक्ति है उस तरह काष्ठमे लोह लेखनी द्वारा लिखा जाने छेदे भेदे जानेकी अशक्ति नही है, इसी तरह यहां भी समझिये कि शब्दकी भी एक बार एक ही अर्थमे प्रतिपादन करनेकी शक्ति है। अनेक अर्थोंके प्रतिपादनकी एक शब्दमे शक्ति नही है। तो यहाँ तक यह निश्चय हुआ कि एक शब्द एक ही अर्थका वाचक है अनेक अर्थोंका नही। और इसी तरह एक अर्थ एक शब्द द्वारा वाच्य है उस प्रत्येक अर्थमे भी एक पद द्वारा वाच्य होनेकी शक्ति है। अनेक अर्थोंके वाच्य होने की शक्ति नही है कि एक पद द्वारा अनेक अर्थ वाच्य हो जायें। अब जो एक उदाहरण दिया था पुष्पवत शब्दका, तो पुष्पवत शब्द क्रमसे दो अर्थोंके प्रतिपादनकी सामर्थ्य रखता है। अतएव इस उदाहरणसे प्रकृत बातमे कोई दोष नही दिया जा सकता। एक शब्द एक ही अर्थका बोधक होता है और चूंकि धर्म यहाँ मूलमे दो बताये गए अस्ति और नास्ति। तो इन दो धर्मोंका प्रतिपादन एक शब्द द्वारा नही हो सकता है। अतएव स्याद् अवक्तव्य नामका चौथा भङ्ग बना है।

एक शब्द द्वारा अनेकार्थका प्रतिपादन होनेकी पुन शङ्का व उसका समाधान —

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! सेना, वन, युद्ध, पक्ति, माला, पानक, ग्राम, नगर आदिक शब्द तो एक अर्थके प्रतिपादन करने वाले देखे गए। जब सेना कहा तो उसमे हाथी, घोडा, प्यादे आदिक सबका समूह आ गया। तो एक सेना शब्दने कितने ही अर्थोंका प्रतिपादन किया। वन कहा तो वनमे जितने प्रकारके वृक्ष हैं, जितने प्रकारके नाले, नदी, पहाड आदि हैं, जितने प्रकारके पशु, पक्षी, हैं उन सबका बोध हो जाता है। तो एक शब्द अनेक अर्थोंका प्रतिपादक हो गया। ऐसे ही पानक (शर्बत) कहा तो उसमे इलायची, शक्कर आदिक अनेक चीजें पडती हैं। तो पानक, यह एक शब्द कह देनेसे उन अनेक रूपोंका बोध हो गया। नगर कहनेसे कितने ही मकान, कितने ही मनुष्य सभीका एक साथ बोध हो जाता है। तो एक शब्दने अनेक अर्थोंका प्रतिपादन करनेका सामर्थ्य देखा गया है ना? इसके उत्तरमे कहते हैं कि भाई, वहाँ भी सभी शब्द एक अर्थका प्रतिपादन करते हैं। सेना शब्दके द्वारा हाथी, घोडा, रथ, प्यादे इन सबका समूहरूप कोई एक ही अर्थ कहा गया है। सेनाने अनेक अर्थको नही कहा किन्तु सेना शब्द अन्य अनेक शब्दोंका समूहरूप एक अर्थको ही कहता है। वन शब्दके कहनेसे कही अनेक वृक्ष नही कहे गए, किन्तु अनेक वृक्षोंका समूहरूप एक पदार्थ कहा गया है। माला शब्दसे अनेक फूलोंको नहीं बताया गया है, माला अनेक फूलोंका वाचक नही है किन्तु अनेक फूलोंका समूहरूप जो एक पदार्थ है उसका वाचक है। पानक कहा गया तो वह नाना अर्थोंका वाचक नही है किन्तु

इलायची, शक्कर आदिक बहुतसे पदार्थोंके समूहरूप एक अर्थका वाचक है। यो ही नगर शब्दने भी अनेक अर्थोंको नही बताया, किन्तु मकान आदिकके समूहरूप एक ही अर्थको बताया है। तो इन शब्दोको पेश करके यह कहना कि देखा एक शब्द अनेक अर्थोंका प्रतिपादक है सो बात अयुक्त है। इन शब्दोके कहनेपर भी प्रत्येक शब्दमे एक एक अर्थका ही प्रतिपादन हुआ है। तो यो सिद्ध हुआ कि शब्द एक ही अर्थका प्रतिपादक होता है अतएव स्याद् अस्ति, स्यादनास्ति, इन दोके वाच्यका प्रतिपादक शब्द न होनेसे या इसका एक साथ कथन करना अशक्य होनेसे स्याद अवक्तव्य नामका चतुर्थ भङ्ग बना है। तृतीयभङ्ग और चतुर्थ भङ्गमें यह अन्तर है कि तृतीय भङ्ग तो उन दो धर्मोंका क्रमसे अर्पण करके बना है और अवक्तव्यमे वे दोनो एक साथ अर्पित होकर अवक्तव्य हो सका तो यो क्रमयोजित दो धर्मोंरूप तृतीय भङ्ग हुआ और सहयोजित दो धर्मोंरूप यह चतुर्थ भङ्ग हुआ है।

वृक्षौ वृक्षा आदि पदोसे अनेकका बोध होनेसे रूप शका व उसका समाधान

❀

अब शकाकार कहता है कि यदि किसी प्रकारसे कह दिया जाय कि एक शब्द एक ही अर्थका प्रतिपादन करता है तो जब "वृक्षौ" यह पद बोला गया तो दो वृक्षोका बोधक कैसे बन गया ? अथवा वृक्षा यह पद बोला गया तो वह बहुतसे वृक्षो का बोधक कैसे बन जायगा? वृक्षौ शब्द दो वचन है जिससे दो वृक्षोका बोध होता है। तो शब्द तो यहा एक है और अर्थ बताया उसने दो वृक्ष, इसी प्रकार वृक्षा यह बहु-वचनान्त शब्द है तो यहा शब्द तो एक ही है और अर्थ कराया दो चार आदिक अनेक वृक्ष। तो देखो एक शब्द द्वारा अनेक अर्थ कहे गये ना ? इस शकाके समाधानमे कहते हैं कि, देखिये व्याकरण शास्त्रमे दो पद्धतिया अपनाई गई हैं एक तो पाणिनि आदिके व्याकरणमे और दूसरा जैनेन्द्र व्याकरणमे। पाणिनीके व्याकरणसे तो एक शेष आरम्भकी बात कही गई है। जैसे कि दो वृक्ष कहे हैं तो दो वृक्ष सबसे पहिले लिखे जायेंगे उसके बाद लिङ्ग वचनमे औ प्रत्यय आया। द्विवचनके औ प्रत्यय आनेपर शेष वृक्ष शब्द हटा दिया और एक शब्द रह गया। तो वृक्षा ऐसा कहनेपर उसमे वृक्ष शब्द न समझना उसमे कई वृक्ष शब्द गर्भित हैं। जो लुप्त शब्द हो गए और जो बचा हुआ शब्द है वे दोनो शब्द एक ही समान हैं और उनका अर्थ वृक्ष ही वृक्ष है। तो अर्थ भी समान है इसलिए एकत्वके विचार करनेसे एक शब्दके प्रयोगकी उपपत्ति बन गई, पर वहां वस्तुत अनेक वृक्ष शब्द लिखे गए थे। अब जैन व्याकरणकी दृष्टिसे निरखें तो जितने शब्द होते हैं वे सब स्वाभाविक रूपसे अपना ही अर्थ बोलते हैं। तो वृक्ष शब्दमे जब द्विवचनका प्रयोग किया गया तो वृक्षका अर्थ तो एक ही अर्थ है वृक्ष। पर द्विवचन लगनेसे द्वित्वका अर्थ हुआ। तो वहा प्रकृति और प्रत्यय ये दो होनेसे दो तरहका बोध हुआ। प्रत्ययका जो अर्थ है

वह प्रकृतिके अर्थ ने मिल जाता है। तब अर्थ यह हुआ द्वित्व विशिष्ट वृक्ष। वृक्ष अर्थ मे वृक्ष ही है ०र जब उसमे द्विवचन शब्दका प्रत्यय लगा दिया तो उसका अर्थ हुआ दुत्व सहित वृक्ष। इसी प्रकार वृक्षा यह बहुवचनका प्रयोग है तो वहा अर्थ यह कि बहुत्व विशिष्ट वृक्ष। प्रकृतिका जो शब्द है उसने तो एक ही अर्थ बताया, पर उसमे जो प्रत्ययमे गर्भित हुआ है तो दुत्व या बहुत्व अर्थ हो गया। तब शब्दका अर्थ हुआ द्वित्व विशिष्ट वृक्ष। अथवा बहुत्व विशिष्ट वृक्ष। तो मतलब यह समझना चाहिए कि पाणिनीय व्याकरणके अनुसार एक शब्द जो शेष रह गया है वह लुप्त हुए शब्द अनेक अर्थोंका बोधक होता है। और, जैन व्याकरणके अनुसार चू कि प्रत्ययसे सहित प्रकृति होगई अतएव प्रत्यय वाच्य अर्थसे विशिष्ट अर्थका बोध होजाता है। निष्कर्ष यह निकला कि चू कि एक शब्द एक ही अर्थका बोधक होता है अतएव किसी शब्दमे यह सामर्थ्य नही है कि एक साथ दो अर्थ कह सके। इसी कारण इस दृष्टिमे स्यात अवक्तव्य नामके चतुर्थ भङ्गकी उत्पत्ति होती है।

प्रत्ययवान् प्रकृति शब्दसे भी एक शब्दकी एकार्थवाचकताके नियमका अभङ्ग

❀

अब वृक्षौ, वृक्षा इन शब्दोके सम्बन्धमे अन्य बातें भी स्पष्ट समझ लीजिये। जैनेन्द्र व्याकरणके अनुसार द्विवचन आदिक जो शब्द हैं वे शब्द ही स्वभावसे द्वित्व और बहुत्व सख्या सहित वृक्षादिकके बोधक हैं, यह बात यहा सिद्ध की गई है। तो अब अनेक धर्मोंसे सहित अर्थ इस वृक्षा शब्दने नही बताया, क्योकि वृक्षत्व रूप धर्म तो एक ही है। केवल प्रत्यय सहित वृक्षा शब्दने उन समान समान वृक्षोकी सख्या जाहिर की है। धर्म तो एक वृक्षत्व ही है। चाहे बहुत वृक्ष कहे गए तब भी उन वृक्षोमे वृक्षत्वरूप धर्म है और उस धर्मसे सहित एक वृक्षत्व धर्मका ही भान हुआ। कही द्विवचन या बहुवचन लग जानेसे अन्य अन्य धर्मोंसे सहित वृक्षका भान नही होता। इस तरहसे अस्ति आदिक परसे भी अस्तित्वरूप धर्मसे सहित पदार्थका ही ज्ञान एक कालमे सम्भव है। और नास्तित्व शब्दसे नास्तित्व धर्मसे सहित पदार्थका ही ज्ञान एक कालमें सम्भव है। अतएव कोई शब्द ऐसा नही है जो दो अर्थोंका एक साथ प्रतिपादन करदे, इसी कारण स्याद् अवक्तव्य नामक चौथा भङ्ग होता ही है।

प्रत्ययवान् प्रकृतिशब्दके प्रयोगमे एक शब्दसे अनेक धर्मका परिज्ञान होने की शका—

❀

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! जब वृक्षा बहुवचन शब्द बोला तो यहाँ हुआ क्या कि जस प्रत्यय सहित प्रकृति वृक्ष है, याने प्रकृति शब्द तो है वृक्ष और

उसमें प्रत्यय लगा है जस, तो सुबन्त और तिङन्त शब्दकी पदसंज्ञा होती है ऐसा सभी व्याकरणोंमे बताया गया है। तो वृक्षा: बहुवचनान्त शब्दसे जो वृक्षत्वरूप धर्म जाना गया प्रत्यय जस सहित, सो वृक्षत्व धर्मसे सहित वृक्षरूप अर्थका ज्ञान हुआ ना, तब यह सिद्ध हो गया कि एक पदने अनेक धर्मसहित अर्थका ज्ञान कराया। देखो! जहाँ बोला गया वृक्षा: तो वृक्षा: मे दो शब्द पडे हुए हैं। प्रकृति शब्द और प्रत्यय शब्द। प्रकृति तो है वृक्ष और प्रत्यय है जस तो प्रत्ययका अर्थ है बहुत और प्रकृतिका अर्थ है वृक्ष तो अब वृक्षत्व व बहुत्व ये दो इसके धर्म हुए ना? और शब्द बोला गया एक वृक्षा:। तो देखो! वृक्षा: इस शब्दने दो धर्मो सहित पदार्थका बोध कराया तब यह नियम तो न रहा कि पद एक ही अर्थका बोधक होता है। देखो! समन्तभद्राचार्यने भी कहा है कि "अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या" ऐसा बृहत् स्वयंभूरमण स्तोत्रसे बताया है कि एक तथा अनेक अर्थ भी पदके वाच्य होते हैं। जैसे–वृक्षा: यहां प्रत्यय सहित वृक्षरूप प्रकृतिसे बहु संख्या वाले वृक्षरूप अर्थका ज्ञान हुआ। इस प्रमाणसे भी यह समझ लेना चाहिए कि एक पद अनेक अर्थोंका भी बोधक हो जाता है।

प्रत्ययवान् प्रकृतिशब्दके प्रयोगमें दो धर्मोंका प्रधानता व गौणत्वसे परिज्ञान होनेसे एकशब्दकी एकार्थ वाचकताके नियमका अभङ्गरूप समाधान--

❀

अब उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि जो कुछ कहा है वह यद्यपि किसी दृष्टिसे यथार्थ है परन्तु एक पद प्रधानतासे एक ही कालमे अनेक धर्मसे सहित पदार्थका बोधक नही होता। यह नियम भी अकाट्य है। देखिये! इस ही प्रकृति प्रसंगमे कि वृक्षा: कहनेमें जो प्रकृति शब्द है वृक्ष उसने तो एक वृक्षत्वरूप जातिसे सहित वृक्ष का ही ज्ञान कराया। या कहो वृक्षत्वरूप धर्मसे सहित वृक्ष पदार्थका ही ज्ञान कराया। इसके पश्चात् लिङ्ग और संख्याका शब्द जन्य ज्ञान हुआ। इसमे बहुवचन शब्द लगा है, इससे बहुत वृक्ष हैं ऐसा बहुत संख्याका बोध जसपदमे होता है। तो यहाँ भी यद्यपि प्रकृति और प्रत्यय दो शब्द जुडे हुए हैं और दो शब्द परस्पर मिल गए हैं। प्रत्यय सहित प्रकृति है, लेकिन बोलनेके क्रमसे भी देख सकते हैं कि जिस समय वृक्षा: बोला तो पहिले वृक्ष प्रकृतिके अर्थका ज्ञान हुआ। उससे तो जाना गया वृक्षत्व धर्म सहित वृक्ष। पश्चात् प्रत्ययका बोध हुआ। उससे जानी गयी बहुत्व संख्या यो प्रत्यय वाली प्रकृतिके द्वारा भी उस शब्दके दो अर्थ विदित हुए। तब वहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि देखो! एक पदने अनेक अर्थका बोध करा दिया। इसमे भी प्रमाण देखिये! सिद्धान्तमे भी कहा है स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्। समवेतस्य तु वचने लिङ्ग संख्या-विभक्ति युक्त सन्। सबसे पहिले तो शब्द अर्थको कहते हैं। शब्दमे जो प्रकृति है जिस प्रकृतिके बाद प्रत्यय मिलाया गया। पहिले तो उस प्रकृति

ने अपने अर्थको बताया जैसे वह निरपेक्ष शब्द होता और जो कुछ बताता वही अब भी बताया गया । अब उसमे वचनोको मिला दिया गया । विभक्ति मिल जानेसे अब वचनके अर्थका उसने बोध किया । तो वृक्षा इस शब्दके बोलनेसे क्रम ज्ञान यह निकला कि पहिले तो वृक्ष शब्दने वृक्षत्व जातियुक्त वृक्ष अर्थ कहा, फिर प्रत्यय लगनेसे उस प्रत्यय वाले अर्थका उसने बोध कराया । तो बोधमे भी क्रम है और यहाँ जोडमे भी क्रम है । अत यह नियम अबाधित है कि एक पद एक कालमे एक ही अर्थका ज्ञान कराता है । ऐसा जब सिद्धान्त बन गया तो वृक्षा इस पदसे वृक्षत्व धर्मसे अविच्छिन्न पदार्थका बोध तो प्रधानतामें हुआ और उसमे जो लिङ्ग है अथवा वचनबोधक प्रत्यय लगा है उससे बहुत्व सख्या अथवा लिङ्गका ज्ञान गौणरूपसे हुआ, इस कारण एक पद एक समयकी प्रधानतासे एक ही धर्म सहित पदार्थका ज्ञान सभी जगह कराता है इस सिद्धान्तमे किसी भी प्रकारका दोष नही है ।

एक पद द्वारा एक अर्थ ही वाच्य होना माननेपर अनेकान्तकी सिद्धिके अभाव की शंका व उसका समाधान—

*

अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यदि एक पद अथवा वाक्यसे प्रधानतासे अनेक धर्म सहित वस्तुका बोध नही होता, यही पक्ष मानते हो अथवा कहो कि एक पद या एक वाक्यसे अनेक धर्मसहित वस्तुका बोध होता है यह स्वीकार नही करते हो, तब यह बतलाओ कि प्रमाण वाक्य अनेक धमस्वरूप वस्तुका प्रकाशक कैसे हो सकता है ? जब यही कहा गया कि एक पद एक ही अर्थका बोधक होता है, तो फिर अनेकान्त कैसे बनेगा ? अनेकान्तमें तो अनेक धर्मस्वरूप वस्तुका प्रकाश होता है । और, यहाँ आग्रह कर रहे हो यह कि एक पद एक ही धर्मसहित वस्तुका बोधक होता है । तब तो अनेकान्तकी सिद्धि न हो सकेगी ? उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि देखिये ! काल, आत्मा स्वरूप अर्थ आदिकके द्वारा द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानतासे अभेद वृत्ति होती है, तब सम्पूर्ण वस्तुका कथन होता है और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे अभेदोपचार किया जाता है तब उस प्रमाण वाक्यसे उस सम्पूर्ण वस्तुका कथन होता है, यह बात तो पहिले प्रसगमे अच्छी तरहसे बता ही दी गई है ।

अवक्तव्य शब्दसे उभयधर्मात्मककी वाच्यता सिद्ध करनेके लिये द्वन्द्व समासकी साक्षिताका शंकाकार द्वारा कथन व उसका समाधान—

*

अब शङ्काकार कहता है कि 'सत्त्वासत्त्वे' इस प्रकारका यदि द्वन्द्व समासमे पद कर दिया जाय तो यह पद सत्त्व और असत्त्व दोनोका प्रधानतासे बोधक बन जायगा कारण यह है कि द्वन्द्व समासमे दोनो ही पदार्थ प्रधान होते हैं । व्याकरणमे कहा भी है—'उभयपदार्थ प्रधानो द्वन्द्व ' द्वन्द्व समासमें जितने पद आये हुए हो वे सभी के सभी

पदप्रधान होते हैं। तो इस तरह द्वन्द्व समासमे पदके द्वारा जब सभी ग प्रधान कथन हो जाता है तब सदसत्त्वात्मक वस्तुको अवक्तव्य कैसे कहा जायगा यानी वस्तु ही तो बताना है उसे द्वन्द्व समास पद द्वारा कहा जायगा, फिर अवक्तव्य कैसे कह रहे हो ? इस शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि देखिये ! द्वन्द्व समास भी कर दिया जाय, लेकिन वहाँ भी दो अर्थोका परिज्ञान क्रमसे ही करानेमे वह समर्थ है। द्वन्द्व समास होनेपर जितने शब्दोका समास किया गया है उन शब्दोका अर्थ क्रमसे ही बतानेमे वह द्वन्द्व समास समर्थ हो सकता है। और दूसरी बात यह है कि इसी कारण द्वन्द्व समास होने पर भी किसीका प्रधानतासे कथन, किसीका गौणरूपसे कथन सम्भव है, यानी वहाँ भी सत्त्व प्रधानतासे और गौणतासे हुआ करता है। तभी तो यह बताया गया है द्वन्द्व समासमे जहाँ कि अनेक पदोका समास होता है और जहाँ यह विवाद होता कि किस पदको पहिले रखना चाहिए ? तो वहाँ निर्णय होता है कि 'अभ्यर्हितं पूर्वं' मायने जो पद पूज्य हो, महत्त्वशाली हो उसका पहिले स्थापन किया जाता है। तो प्रधानभूत अर्थका शब्द पहिले रख देना यह बात तब ही सङ्गत है जब कि द्वन्द्व समासमें यह निर्णय है कि समस्त पदोंका कथन और बोध क्रमसे होता है और किसीका प्रधानतासे व किसीका गौणतासे। भले ही किसीका कथन है उसमे प्रधानतासे, लेकिन मान भी लो कि द्वंद्व समासमें दोनो पदोका भी बोध प्रधानतासे होता है। हो गया मानो तो भी प्रधानभावसे अस्तित्व और नास्तित्व दोनों धर्मोंसे सहित धर्मीका प्रतिपादन करने वाला कोई शब्द नही है, इसी कारणसे अवक्तव्यपना तो ज्यो का त्यो निर्बाध बना।

द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समासकी साक्षितामें भी अवक्तव्य शब्दसे उभयात्मक पदार्थवाच्यताकी अनुद्भूति—

ॐ

अब शङ्काकार कहता है कि देखिये ! एक वाक्य बोला कि सदसत्त्वविशिष्ट वस्तु ! अब यह है द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास यानी इसमे सदसत्त्वका तो द्वन्द्व समास किया गया, फिर उसके बाद विशिष्ट शब्दका तत्पुरुष समास किया गया जिसका अर्थ कि सत्त्व और असत्त्वसे सहित वस्तु। तो इस पदके द्वारा दोनो धर्मोंसे सहित वस्तुका बोध तो बन गया तब अवक्तव्यपना कैसे सम्भव रहा ? वक्तव्य तो हो गया, दोनो धर्म एक साथ इस पदके द्वारा कह दिए गए। इस शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि भाई, इस समासमें सत्त्व और असत्त्वसे विशिष्टपनेकी प्रधानता है न कि सत्त्व और असत्त्व की प्रधानता है। इस समासमे जो कि द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास है, वहाँ सत्त्व और असत्त्व दोनोकी अप्रधानता है, प्रधानता तो वैशिष्ट्यकी है, क्योकि व्याकरणमें कहा गया है उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष यानी तत्पुरुष समासमें उत्तर पदार्थकी प्रधानता होती है जो अन्तिम शब्द हो, उसकी प्रधानता होती है। जैसे बच्चोंसे सहित देवदत्त, तो यहाँ प्रधान कौन रहा ? सहित, जो सहित हो वह देवदत्त प्रधान रहा। तो द्वन्द्व

समासमे तो उभयपद प्रधान होता है, लेकिन बोध उनका क्रमसे होता है और तत्पुरुष समासमें उत्तर पदार्थकी प्रधानता होती है। तब यहाँ भी दो धर्मोंका प्रतिपादक कोई शब्द न मिला इस कारण सब धर्मोंका एक साथ प्रतिपादन कर सकने वाला कोई पद नही है। अतएव स्याद् अवक्तव्य घट यह कहना बिल्कुल सिद्ध है याने चतुर्थ भङ्ग युक्तिपूर्वक सिद्ध हो जाता है।

अवक्तव्य शब्दकी वाच्यताके सम्बन्धमे शका व उसका समाधान—

❀

अब इस अवक्तव्य धर्मके सम्बन्धमे अन्य भी बात सुनो ! यहाँ कोई संत जन कहते हैं यह अवक्तव्यरूप अर्थ सवथा ही अवक्तव्य नही है कि किसी भी तरहसे न बोला जा सके। क्योकि देखिये ! अवक्तव्य शब्दको तो यही ही कहा जा रहा है। और जब कहा जा रहा है अवक्तव्य शब्दको तब तो स्याद अवक्तव्य यह चतुर्थ भङ्ग बनता है। इस प्रकारसे कोई सतपुरुष कहते हैं तो अब यहाँपर यह विचार करना चाहिए कि अवक्तव्य शब्दका वाच्य अर्थ क्या है ? याने इस अवक्तव्य शब्दसे पदार्थ क्या कहा गया है ? कदाचित् यह कहो कि प्रधानताको प्राप्त सत्त्व और असत्त्व धर्मों से सहित पदार्थ अवक्तव्य शब्दसे कहा गया है याने अवक्तव्य शब्दसे वह पदार्थ कहा गया, जिस पदार्थमे सत्त्व और असत्त्व दोनो ही धर्म प्रधान हैं। सो ऐसा नहीं कह सकते क्योकि प्रधानरूपसे रहे ऐसे सत्त्व और असत्त्वका एक कालमे कोई वाचक शब्द नहीं है। प्रधानरूप रहे सत्त्व और असत्त्व ऐसा कुछ किसी भी शब्द द्वारा वाच्य नही होता। और, यहाँ कह रहे हो यह कि वह पदार्थ अवक्तव्य शब्दसे कह दिया गया है, तो इसका अर्थ यह होगा कि दोनो प्रधान धर्मोंसे सहित पदार्थको कहने वाला अवक्तव्य शब्द बन गया। कोई शब्द वाचक हो गया तब इस नियमका भङ्ग हो जायगा कि सर्व धर्मोंको एक साथ कह सकने वाला कोई शब्द नही है। तो यो अगर अवक्तव्य शब्दका वाच्य अर्थ लगा दिया जाय कि अवक्तव्य शब्दने प्रधान समस्त धर्मों सहित एक पदार्थको कह दिया तो इसमें सिद्धान्तका विघात है। सिद्धान्तमे दो नियम कहे गए हैं। एक तो यह कि सबका एक साथ वर्णन करदे ऐसा कोई शब्द नही है, दूसरा नियम यह कि एक पद एक ही कालमें प्रधानरूपसे अनेक धर्म सहित वस्तुका बोधक नही होता। अतएव यह बात युक्तिसगत न जची कि अवक्तव्य शब्दका वाच्य एक साथ योजित दोनो धर्मोसे सहित पदार्थ है।

सकेत सिद्ध मानकर भी अवक्तव्य शब्दसे उभयात्मक पदार्थकी वाच्यताका अभाव—

❀

यदि यह कहो कि यह तो एक संकेत शब्द है। किसी भी वाच्यका वाचक

कुछ भी सकेत बना लीजिए। सकेतसे वही पदार्थ ग्रहणमे आये, यही तो सकेतका प्रयोजन है। सो इस अवक्तव्य शब्दको हम सकेत सिद्ध शब्द मान लगे कि इस शब्द द्वारा एक साथ अर्पित अनेक धर्मोंसे सहित वस्तुका बोध किया जायगा। तो इसके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह अवक्तव्य सकेत सिद्ध शब्द होनेसे अवक्तव्य यह शब्द यदि दोनो धर्मोंसे सहित वस्तुका वाचक मान लिया जाय तो जैसे इस सकेतसे उभय धर्म सहित वस्तु वाच्य मान लिया, ऐसे ही सकेतसे सिद्ध अन्य सकेत इस पदार्थके वाचक क्यो नही हो जाते ? याने सकेत करनेकी बातपर जब आ गए तो सकेत अटपट हो जाय या किन्ही भी सकेत शब्दोंसे जिस चाहेका अर्थ ज्ञानमे लगा दिया जाय, पर ऐसा तो नही है। शकाकार कहता है कि बात वहा यह है कि अन्य जो सकेत सिद्ध पद हैं वे क्रमसे ही सत्त्व असत्त्वसे सहित वस्तुके बोधक हैं। शकाकारके प्रति यह आक्षेप देनेपर कि अगर अवक्तव्य सकेत सिद्धि शब्दसे दोनों धर्मोंसे सहित वस्तुका बोध किया गया तो अन्य भङ्ग भी तो सकेत सिद्ध मान लीजिए। वहा क्यों नही दोनो धर्मोंसे सहित वस्तुका बोध किया जाता ? उसके उत्तरमे शकाकार यहां यह कह रहा कि अवक्तव्य शब्दको छोडकर अन्य जो सकेत सिद्ध पद हैं वे क्रमसे ही सत्त्व असत्त्व धर्मसे सहित वस्तुका बोध कराने वाले हैं, इसके उत्तरमे कहते हैं कि तब सकेत सिद्ध अन्य पदोके समान सकेत सिद्ध अवक्तव्य यह पद भी एक कालमे सत्त्व और असत्त्व धर्मसे सहित वस्तुका बोधक न हो सकेगा। जैसे कि अन्य सकेत सिद्ध पदोंसे अनेक धर्म सहित पदार्थका ज्ञान क्रमसे ही हुआ ऐसे ही अवक्तव्य इस पद से भी अनेक धर्मोंका ज्ञान क्रमसे ही हो सकेगा, क्योकि दोनो ही सकेत सिद्ध पद हैं। अवक्तव्यको सकेत सिद्ध शकाकार कह रहा उसी प्रकार बाकी अन्य शब्द भी तो सकेत सिद्ध ही हैं। तब किसी एक सकेत सिद्ध शब्दकी ही कोई बात मान ली जाय यह विशेषता कैसे बन सकेगी ? अन यहां यो नही कह सकते कि अवक्तव्य इस पद से तो दोनो धर्मोंसे सहित वस्तुका बोध हो जायगा। और अन्य सकेतसे न होगा किन्तु इस विषयमे अवक्तव्य शब्दका वाच्य यह है कि अवक्तव्य इस शब्द पदसे यह कहा गया 'वक्तव्यपनेका अभावरूप धर्मसे सहित पदार्थ'। अर्थात् ऐसे धर्मों वाला पदार्थ जो वक्तव्य न हो सके यह कहा गया है अवक्तव्य शब्दसे, न कि सत्त्व और असत्त्व दोनो धर्मोंसे सहित पदार्थ कहा गया है। यह तो जो विवेकी होंगे उन सबके अनुभवमे उतरने लायक बात है।

स्याद अवक्तव्यत्वमे एकान्तसे अवाच्यताके अभावकी ध्वनि—

❀

शङ्काकार कहता है कि फिर समन्तभद्राचार्यने आप्तमीमांसामे यह कहा है कि 'उक्तिश्चावाच्यतैकान्तेनावाच्यमिति युज्यते' याने अवाच्यताका जो कथन है वह एकान्तरूपसे अवाच्य है ऐसा माननेमे अवाच्यपना भी न कहा जा सकेगा, ऐसे समन्त

भद्राचार्यके वचनकी संगति कैसे रहेगी, क्योंकि आचार्यके इन वचनोंके कहनेका भावार्थ यह है कि यदि सत्त्व असत्त्व धर्मसहित वस्तुको अवक्तव्य मानोगे तो वह अवक्तव्य इस पदसे भी न कहा जा सकेगा और स्यादस्ति आदि किसी शब्दसे भी कुछ वक्तव्य न होगा, क्योंकि जब सर्वथा अवक्तव्य है तो उसके मायने है कि वह बिल्कुल ही अवक्तव्य है, किसी भी पदसे नहीं कहा जा सकता। अतः अवक्तव्यत्वका अर्थ कथंचित वक्तव्य रूपसे लेना ही चाहिए। अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं कि भाई तुमने समन्तभद्राचार्यके वचनोंका अर्थ ही नहीं समझा, उस वचनका अर्थ यह है कि सत्त्वादिक धर्मोंमेसे किसी एक धर्मके द्वारा जो पदार्थ कहे जा सकनेके योग्य है वही पदार्थ प्रधानतया सत्त्व असत्त्व इन दो धर्मोंसे युक्त रूपसे अवाच्य है। अवाच्यका अर्थ यह है कि दोनों धर्म प्रधानरूपसे एक साथ नहीं कहे जा सकते। यदि सत्त्व असत्त्व धर्म सहित पदार्थको सत्त्वादिक एक धर्मके द्वारा भी अवाच्य मानें तो वाच्यत्वका अभावरूप धर्म है उस अभावरूप धर्मके द्वारा वस्तुको कहने वाले अवाच्य इस शब्दसे यह वस्तु वाच्य न बनेगा, स्वामी समन्तभद्राचार्यके वचनका यह अभिप्राय है। अथ चेत् अवक्तव्य है इसका अर्थ यह है कि एक धर्मको प्रधानरूपसे कहनेकी दिशामें वह वक्तव्य है। ऐसा शुद्ध अर्थका व्याख्यान न करके यदि ऐसा व्याख्यान करेंगे कि सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्मसे अवाच्य जो पदार्थ है वही सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्म सहित वस्तुको कहने वाला अवाच्य शब्द है। मायने अवक्तव्य इस शब्दसे उभय धर्म सहित वस्तुको, कहा गया है। ऐसा व्याख्यान करेंगे तो इससे क्या निष्कर्ष निकलेगा कि जिस रूपसे पदार्थ अवाच्य है उसी रूपसे वह वाच्य भी हो गया। अब देखिये ! स्याद्वादका इसमें कितना विघात है कि जिस अपेक्षासे पदार्थको अवाच्य कहा उसी अपेक्षासे पदार्थको वाच्य भी कह डाला। और, जब यह बात बना ली तब फिर यह प्रसंग आ गया कि जिस रूपसे वस्तुका सत्त्व है उसीरूपसे उसी वस्तुका असत्त्व भी है यह उल्टा प्रसंग आ जायगा। पर ऐसा कहीं होता है क्या ? अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे वस्तु असत् हो जायगा ? यदि इस प्रकार मानोगे तो समन्त भद्रस्वामीके इस वचनका विरोध प्राप्त होगा कि विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादनयवेदिना अर्थात् विरुद्ध होनेसे सत्त्व असत्त्व इन उभय धर्ममें किसी एक धर्मरूपसे अवक्तव्यपना स्याद्वाद न्यायके जानने वाले स्वीकार नहीं करते। विरुद्ध होनेसे दोनोंका एकात्म्य नहीं है। इस वचनका फिर विरोध हो जायगा,—क्योंकि अब तो इस पद्धतिपर आ गए कि जिस अपेक्षासे अवाच्य है उसी अपेक्षासे वाच्य भी बन गया इस कारण अवक्तव्यत्वका यह अर्थ न करना कि अवक्तव्य शब्दसे उभय धर्मसे युक्त वस्तु कहा जाता है। अवक्तव्य शब्दसे तो यह कहा गया है कि दोनों धर्म प्रधानतया एक कालमें कहे जा सकने योग्य नहीं हैं। इस सम्बन्धमें सिद्धान्तवेदी पुरुष कहते हैं कि अवक्तव्य घट है ऐसा जो चतुर्थभङ्ग किया है तो उसमें घटको सर्वथा अवक्तव्य नहीं कहा। कथंचित अवक्तव्य है। यदि यह कह देते हैं कि घट अवक्तव्य ही है तो ऐसा कहनेसे घटका सर्वप्रकारसे अवक्तव्यपना आ जाता है। जब सर्वथा अवक्तव्यपना

आ जाता तो इसके मायने यह है कि अस्तिनास्तित्व आदिक प्रथम द्वितीय भङ्गोंके रूप में भी उसका वर्णन न हो सकेगा। इसलिए अवक्तव्य शब्दके पहिले स्यात् इस निपात का प्रयोग किया गया है। और, इस स्यात निपातके लगनेसे यह अर्थ हुआ कि सत्त्व आदिक रूपसे तो घट वक्तव्य है, किन्तु एक ही समयमें प्रधानरूप सत्त्व असत्त्व ये दो धर्म कह दिए जायें इसरूपसे अवक्तव्य है। स्याद अवक्तव्य एव घट इसमे जितने भी शब्द दिए गए हैं वे शब्द सार्थक हैं, कथचित अवक्तव्य है घट इसके मायने यह है कि स्याद अस्ति स्यादनास्ति आदिक अन्य भङ्गोकी अपेक्षा वक्तव्य है ऐसा इस चतुर्थ भङ्ग का तात्पर्य निकला।

स्यादस्ति अवक्तव्य नामका पञ्चम भङ्ग—

अब ४ भङ्गोके बाद तीन भङ्ग और आते हैं वे सब सयोगी भङ्ग हैं। ५ वाँ भङ्ग है स्याद अस्ति अवक्तव्य। छठा है स्यादनास्ति अवक्तव्य और सातवाँ स्यादअस्ति नास्ति अवक्तव्य। तो समुदित सयोग रूपसे द्रव्य पर्यायका आश्रय करके ये अतिम ३ भङ्ग बना करते हैं। जैसे कि ५ वाँ भङ्ग बना। उसमें प्रथम तो द्रव्य अर्पित लिया सह अर्पित द्रव्य पर्याय ली। देखो! द्रव्य दृष्टिसे तो अस्ति है पर्याय दृष्टिसे नास्ति है अथवा स्वरूपकी अपेक्षासे अस्ति है, पररूपकी अपेक्षासे नास्ति है। तो यहाँ अस्ति तो एक पृथक रूपसे लिया और अस्ति नास्ति दोनो एक साथ लेना चाहा। तो व्यस्त रूपमे अस्ति व अस्ति नास्ति दोनो समस्त एक साथ यो जब आश्रय करते हैं तो बनता है स्यादस्ति अवक्तव्य। इस तरह अलगसे तो द्रव्यका और एक साथ अर्पित दोनोंको द्रव्य पर्यायका आश्रय करके यह पचम भङ्ग हुआ स्याद अस्ति अवक्तव्यएवघट इसका तात्पर्य यह है कि घटरूप जो एक धर्मी है उसे तो बनाया विशेष्य, क्योंकि उसकी ही बात विशेषतामें बतानी है। उस एक धर्मीमे सत्त्व विशिष्ट अवक्तव्यताके प्रकारसे ज्ञान को उत्पन्न करने वाला यह वाक्य था। यहाँ पर द्रव्यकी विवक्षामे तो अस्तित्वकी बात आयी, और एक साथ द्रव्य पर्यायकी अपेक्षामे अवक्तव्यपनेकी बात आयी। और एक साथ द्रव्य पर्यायकी अपेक्षासे अवक्तव्यपनेकी बात आयी।

स्यान्नास्ति अवक्तव्य एव नामका छठा भङ्ग—

अब छठवाँ भङ्ग है स्यादनास्ति अवक्तव्यएवघट। इसमें पृथकरूपसे पर्याय तथा मिलानेरूपसे द्रव्य पर्यायका आश्रय करके यह भङ्ग बना है। पररूपकी अपेक्षासे नास्तित्व कहा है और स्वपर रूप दोनोको एक साथ प्रधानरूप तकनेकी दृष्टिसे अवक्तव्य कहा है। इसमें क्या बोध बना कि घट तो है एक धर्मी विशेष, जिसके विषयमे कुछ वर्णन करते हैं, जिसकी विशेषता बताते हैं उस विशेष्यमें नास्तित्त्व सहित अवक्तव्यपनेके प्रकार वाला ज्ञान उत्पन्न हो। तो यों छठे भङ्गमे दो आश्रय हुए। अलग

अलगरूपसे तो पररूपका अथवा पर्यायका आश्रय है और एक साथ प्रधानरूपसे द्रव्य पर्यायका आश्रय किया। ऐसी स्थितिमे यह बोध उत्पन्न हुआ कि स्यादनास्ति अवक्तव्यएवघट ।

स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य नामका सप्तम भङ्ग—

❀

अब ७ वाँ भङ्ग कह रहे हैं। ७ वें भङ्गका रूप है स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्य एव घट । इसमे अलग-अलग क्रम योजित द्रव्य पर्यायका आश्रय किया है। तथा मिले हुए एक साथ योजित द्रव्य पर्यायका आश्रय हुआ है, तब यह बोध बना कि स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्य एव घट । इस लक्षणमे ज्ञान किस प्रकारसे हुआ कि घट रूप तो एक वस्तु विशेष्य है जिसके सम्बन्धमे किसी भी प्रकारकी विशेषता बताते हैं, उसमे सत्त्व असत्त्वसे विशिष्ट अवक्तव्यपनेके प्रकारका बोध उत्पन्न किया जा रहा है। इस तरह सप्तभङ्गमे क्रमसे अर्पित द्रव्य पर्यायका आश्रय है और एक साथ अर्पित द्रव्य पर्यायका आश्रय है। तब यह भङ्ग जो कि तृतीय और चतुर्थ भङ्गका मेल सा दिखता है, सप्तमभङ्ग निष्पन्न होता है।

द्रव्यकान्त व पर्यायकान्तका निराकरण—

❀

अब इस समय शङ्काकार कह रहा है कि द्रव्य ही तत्त्व है। पर्याय तो तत्त्व नही है। इसलिए स्याद अस्ति एव यही एक भङ्ग बनेगा, स्याद नास्तिका भङ्ग बनना अयुक्त है। यह शङ्का सांख्यसिद्धान्तसे मिलकर होती है। सांख्यसिद्धान्त तो केवल विधि है, वहाँ प्रतिषेधका स्थान नही। वहाँ अस्तित्व ही बताया गया है। नास्तित्व का विधान नहीं है। उस दृष्टिसे यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि स्याद अस्ति ही पदार्थ है, क्योकि द्रव्य ही तत्त्व है। पर्याय है ही नही। पर्याय मानी ही नही गई। जो भी सत् है, ब्रह्म अद्वैत, सर्व एक है पररूप तो कुछ है ही नही, वह मूलमे अपरिणामी है। इस तरह स्याद् अस्ति एव यही भङ्ग सत्य है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन करना अयुक्त है, जैसे द्रव्यका सत्त्व प्रतीत होता है उसी प्रकार पर्यायकी भी प्रतीति होती है कोई भी सत् ऐसा नहीं है कि वह है, पर वहाँ परिणमता न हो। इस कारण परिणमन शून्य सत् न होनेसे कोई द्वितीय भङ्गका निषेध नही कर सकता। सत् है और वह परिणमता है। तो यो द्रव्यका प्रतिपक्षी पर्याय है स्वरूपका प्रतिपक्षी पररूप है। तो प्रथम दोनों भङ्गोका होना आवश्यक है और यो ही सीधा समझिये कि कोई कुछ भी कहे उस सम्बन्धमें यह तो कहना ही होगा कि जो यह बात रखी है इनमे विपरीत नहीं है। जैसे किसीने कहा कि मैं सच बोलता हू तो उसका अर्थ तो यही निकला कि मैं झूठ नहीं बोलता हू। यों ही जब कहा गया कि पदार्थ नित्य है तो

दूसरी बात आ ही गई कि अनित्य नही है। इस तरह भी भङ्ग चलेगा और द्रव्य पर्यायका सहारा लेकर भी उसमे भङ्ग बनता है। यो प्रथम और द्वितीय भङ्गका अस्तित्व बराबर प्रतीति सिद्ध है। यदि नास्ति नहीं मानते तो अस्ति भी नहीं बन सकता। जैसे कि अस्ति न माननेपर नास्ति नही बना करती। तो यो स्याद अस्ति इस प्रथम भङ्गके एकान्त वाला सिद्धान्त युक्त नहीं है। जैसे कि कोई क्षणिकवादमे पर्याय ही तत्त्व है इस कारण नास्ति यह भङ्ग नही है। ऐसा माननेका सिद्धान्त गलत है, क्योंकि वहां भी द्रव्यकी प्रतीति बराबर है। सांख्य तो परिणमन नहीं मानते और क्षणिकवादी द्रव्य नहीं मानते, पर वस्तु द्रव्यपर्याय स्वरूप है अतएव स्याद अस्ति और स्याद नास्ति ये दोनो ही भङ्ग युक्तिसिद्ध है।

अवक्तव्यैकान्तका निराकरण—

जिस प्रकार कोई स्याद अस्ति यह ही एकान्तत माने और स्याद् नास्ति यह ही एकान्तत माने तो वह मानना अयुक्त है, क्योंकि द्रव्य भी प्रतीतिसिद्ध है और पर्याय भी प्रतीतिसिद्ध है, ऐसे अवक्तव्य ही वस्तुतत्त्व है, ऐसा कोई अवक्तव्यपनेका एकान्त करे तो वह भी स्ववचनवाधित है। जैसे कि अभी सांख्यमतानुयायितामे यह एकान्त किया गया था कि स्याद् अस्ति यह ही एक भंग है। और जैसे क्षणिकवादमे यह एकान्त किया गया था कि स्यादनास्ति यही एक भग सही है। इसी प्रकार यदि यह एकान्त किया जाय कि अवक्तव्य ही वस्तुतत्त्व है तो यह एकान्त भी उन एकान्तो की तरह वाधित है और अवक्तव्य ही वस्तु तत्त्व है। इस तरहका कथन तो स्पष्ट स्ववचनवाधित है। कहते तो जा रहे हैं वक्तव्य, तो हो रहा है और कह रहे हैं कि अवक्तव्य ही है। जैसे कोई पुरुष यह कहे कि मैं तो सदा मौन व्रतमे ही रहता हू तो वह बोलता तो जा रहा है और बताता है यह कि मैं सदा मौनमे ही रहता हू। तो जैसे यह स्ववचनवाधित है इसी प्रकार अवक्तव्य ही वस्तु है यह कथन भी स्ववचन-वाधित है। इसी प्रकार अन्य जो एकान्त हैं वे भी प्रतीति द्वारा वाधित हैं। उन एकान्तोंके विरुद्ध अनेकान्त स्वरूप वस्तु तत्त्वकी प्रतीति होती है। इस कारण अनेकान्तवाद ही युक्तिसिद्ध निर्विवाद प्रतीत होता है।

अनेकान्तमे भी सप्तभंगी होने या न होनेका प्रश्न—

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि भाई ! अनेकान्तमें भी तो विधिपेघरूप सप्तभंगी जोडनी होगी या नही ? यदि कहो कि अनेकान्तमे भी विधि और प्रतिषेध की सप्तभगी चलती है तो अनेकान्तिका जब निषेध किया तो उस कल्पनामें एकान्त ही तो सिद्ध हुआ। फिर एकान्त पक्षमें जो दोप दे रहे हो वह दोप यहाँ भी आ जायगा, क्योंकि अनेकान्तका विधि और प्रतिषेध माननेपर यही तो कहा जायगा कि

स्याद अनेकान्त है स्याद अनेकान्त नही है । तो अनेकान्त नही है इसका निष्कर्ष यह निकला कि एकान्त है । तो एकान्तमे जो दोष है वह यहाँ भी लगेगा । और फिर अनवस्था दोष भी होता है । क्योकि उस प्रकारके अनेकान्त व एकान्तमे भी अन्य अनेकान्तकी कल्पना द्वारा विधि और प्रतिषेध वक्तव्य हो जायगा, याने इस प्रकार एकान्तकी भी अन्य अनेक कल्पनायें करें तो वहा भी विधि और निषेध करते हुए चले जावो जो जितने अनेकान्त कहेगे वहा सब जगह ही विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करते जाना होगा । तब कही भी विश्राम न मिलेगा । तो यहा अनवस्था दोष आता है तो यदि एकान्तमे भी सप्तभङ्गी चलती है यह पक्ष मानते हो तो यदि कहो कि अनेकान्तमे सप्तभङ्गी नही चलती है तब तो यह कहना कि "समस्त वस्तु समूह सप्तभङ्गीसे व्याप्त है" यह सिद्धान्त फिर न रहेगा ।

अनेकान्तमे भी सप्तभङ्गीकी पद्धतिके वर्णनका उपक्रम—

❀

उक्त शकाके समाधानमे कहते हैं कि अनेकान्तमे भी सप्तभङ्गी है अथवा नही है और दोनो ही पक्षोमे कुछ दोषकी कल्पना करना यह सब अयुक्त है क्योकि प्रमाण और नयकी विवक्षाके भेदसे अनेकान्तमे भी सप्तभङ्गीकी उपपत्ति है । वह किस तरह सो समझिये । एकान्त होता है दो प्रकारका एक सम्यक् एकान्त और दूसरा मिथ्या-एकान्त । याने एक सही एकान्त और एक गैर सही एकान्त । इसी तरह अनेकान्त भी दो प्रकारका होता है एक सम्यक् अनेकान्त और दूसरा मिथ्या अनेकान्त । सम्यक् एकान्त प्रमाणके विषयभूत अनेक धर्मात्मक वस्तुमे रहने वाले एक धर्मको विषय करता है और धर्मान्तरोका निषेध नही करता है । सम्यक् एकान्तमे दो बातें दृष्टिमे लानी चाहिए एक तो यह कि प्रमाणके विषयभूत अनेक धर्मात्मक वस्तुमेसे एक धर्मको विषय कर रहा है याने सम्यक एकान्तका उपयोग करने वाले ज्ञानी पुरुष के निर्णयमे प्रमाणका निर्णय भरा पड़ा है । अब उस प्रमाणसे परिगृहीत वस्तुमेसे एक धर्मको इस समय जान रहा है । दूसरी विशेषता यह है कि सम्यक एकान्त अकथित अन्य धर्मोका निषेध नहीं करता । अब मिथ्या सिद्धान्तका स्वरूप सुनो । मिथ्या एकान्त एक धर्म मात्रके ही निश्चय करनेसे अन्य समस्त धर्मोका निराकरण करनेमे चतुर रहता है । अर्थात् मिथ्या एकान्त केवल एक धर्म मात्रका निश्चय करता है और उस वस्तुमें पाये जाने वाले अन्य समस्त धर्मोका निराकरण नही करता है । यह तो हुआ सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्तका स्वरूप । अब सुनो सम्यक अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्तका स्वरूप । एक वस्तुमे अस्तित्व नास्तित्व आदिक नाना धर्मोका निरूपण करनेमें समर्थ और प्रत्यक्ष, अनुमान आगम आदिकसे अविरुद्ध सम्यक् अनेकान्त होता है सम्यक् अनेकान्तका स्वरूप समझनेके लिए इन दो बातो पर दृष्टि डालियेगा कि एक तो यह कि वह एक वस्तुमे नाना धर्मोका निरूपण करता

है। दूसरी बात यह कि सम्यक् अनेकान्तनयने जो कुछ बताया वह न तो प्रत्यक्षसे ही बाधित होगा, न अनुमानसे, न आगम आदिकसे। ऐसा निर्बाध समस्त धर्मोंका वर्णन करने वाला अनेकान्त होता है और मिथ्या अनेकान्त प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध अनेक धर्मोंकी कल्पना करनेको कहते हैं। मिथ्या अनेकान्तमें ऐसे अनेक धर्मोंकी कल्पना की जाती है कि जो प्रत्यक्ष अनुमान, आगम आदिकसे विरुद्ध पडते हैं। तो इस तरह सम्यक एकान्त और मिथ्या एकान्तके स्वरूप हुए। अब उन ४ बातोंमेसे पृथक-पृथककी विशेषता देखिये कि सम्यक एकान्त तो नय कहलाता है। और मिथ्या एकान्त नयाभास कहलाता है। याने वास्तविक नय है सम्यक एकान्त और झूठा नय है मिथ्या एकान्त। इस प्रकार सम्यक् अनेकान्त प्रमाणरूप है और मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है। याने वास्तविक प्रमाणभूत तो सम्यक् अनेकान्त होता है और जो मिथ्या अनेकान्त है याने प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध अनेक धर्मोंकी कल्पना करने रूप जो मिथ्या अनेकान्त है वह झूठा प्रमाण है।

अनेकान्तमे सप्तभङ्गीकी विधि—

❀

सम्यक एकान्त, मिथ्या एकान्त, सम्यक अनेकान्त, मिथ्या अनेकान्तका स्वरूप समझकर अब यह समझिये कि सप्तभङ्गीकी योजना यहाँ किस प्रकार लगती है? सम्यक एकान्त और सम्यक अनेकान्तका आश्रय लेकर जब प्रमाण और नयकी योजनाकी अपेक्षा की जाती है तो उस अपेक्षासे ये ७ भङ्ग उत्पन्न होते हैं कि कथंचित् अनेकान्त है, कथंचित् एकान्त है, कथंचित् उभय, कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् एकान्त अवक्तव्य, कथंचित् अनेकान्त अवक्तव्य और कथंचित् एकान्त अनेकान्तरूप और अवक्तव्य है। इस तरह सप्तभङ्गीकी योजना बन जाती है। अब उनका विवरण सुनो! नयकी विवक्षासे तो स्यात् एकान्त बनता है, क्योंकि स्यात् नय एक एकान्तको विषय करता है। तो नयकी अपेक्षासे स्यात् एकान्त हुआ। और, प्रमाणकी अपेक्षासे स्यात् अनेकान्त हुआ, क्योंकि प्रमाण समस्त धर्मोंका निश्चयात्मक होता है। प्रमाणसे एक वस्तुके सकल धर्मोंका निर्णय होता है। अब इन दो भङ्गोके प्रति परस्परमे ऐसा तर्क बनायें कि देखिये! यदि अनेकान्त अनेकान्त ही है, एकान्तरूप नही है अर्थात् एक अनेकान्तका ही आग्रह किया जाय और एकान्तका निषेध किया जाय तो देखिये, एकान्तका अभाव होनेपर एकान्तका समूहरूप ही अनेकान्त था सो अनेकान्तका भी अभाव हो जायगा। जैसे कोई पुरुष वृक्षको तो माने और शाखाओंका निषेध करे। कहे—भाई! वृक्ष ही है, शाखा कुछ भी नही है। तो शाखाओंका अभाव होनेपर वृक्षका अभाव हो गया। जहाँ शाखा, पत्ता, पुष्प आदिक कुछ नहीं है वहाँ वृक्ष ही क्या है? तो अनेकान्त होता है एकान्तका समूहरूप याने सम्यक एकान्तका जो समुदाय है वही सम्यक एकान्त है। अब एकान्तका किया जाय सर्वथा निषेध तो अनेकात

कहांसे बनेगा ? तब मानना ही होगा कि स्यात् अनेकान्त है, स्याद एकान्त है। इस तरह जब ये दो मूल भङ्ग सिद्ध हो जाते हैं कि स्यात् एकान्त और स्याद् अनेकान्त। तब उत्तर भङ्गोंकी भी योजना बन सकती है याने स्यात् एकान्त अनेकान्तरूप, स्यात उभयरूप याने अवक्तव्यरूपादिक शेषके ५ धर्म भी बन जायेंगे। यों प्रमाण और नय की विवक्षामे सप्तभङ्गीकी सिद्धि होती है।

स्यान्नित्य आदिके सम्बन्धमे सप्तभङ्गीका दिग्दर्शन —

सप्तभङ्गीका निरूपण स्यादस्ति स्यादनेकान्त आदिकी तरह नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व आदिक धर्मोंके सम्बन्धमे भी लगाना चाहिए। जैसे पहिले बताया था स्याद घट अस्ति, स्यादनास्ति। अब जरा नित्यत्वके प्रसङ्गमे भी सप्तभङ्गी देखो। वहाँ यो सप्तभङ्गी चलेगी कि स्याद् नित्य एव घट, स्यादनित्यत्व एव घट, क्योंकि घट द्रव्यरूपसे तो नित्य है और पर्यायरूपसे अनित्य है। तो द्रव्यकी विवक्षामे नित्य हुआ और पर्यायकी अपेक्षासे अनित्य हुआ। और जब नित्यत्वके ये दो मूल भङ्ग हो गए तो अब इसके आधारसे शेष ५ धर्म भी सिद्ध कर लेना चाहिए। यो ही एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मोंके सम्बन्धमे भी सप्तभङ्गी घटित कर लेना चाहिए। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे नियमसे पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट भी होते हैं, परन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे न तो पदार्थ उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं। इस छदमे एक यह बात बता दी कि द्रव्यार्थिकनयसे वह पदार्थ नित्य है और पर्यायार्थिक नयसे पदार्थ अनित्य है। तो यो नित्य और अनित्यमें सप्तभङ्गी बनी है। इसी प्रकार एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मोंमे भी सप्तभङ्गी घटित होती है।

स्यादनित्य घट इस तृतीय भङ्गकी उपपत्ति न होनेकी शका—

अब शकाकार कहता है कि प्रथम जो भङ्ग कहा गया है कि, स्याद् नित्य घट कथचित् घट नित्य है, इस वाक्यमे स्याद् शब्दका अर्थ कथचित् ही है। जो कि सतुपनाके ससर्गरूपसे प्रति भासित है याने जो नित्यपना है उस नित्यपनेसे युक्त घट है यह हुआ प्रथम वाक्यका अर्थ। स्यादनित्य घट, उसका अर्थ ससर्ग रूपसे बना। तो जैसे प्रथम भङ्गका अर्थ इस तरह ससर्ग रूपसे बना कि द्रव्यरूपसे सहित है नित्यत्व, उस नित्यत्वसे युक्त है घट यह बात स्याद् नित्य घट ने बताया। क्योंकि द्रव्यत्वकी व्याप्ति नित्यत्वके साथ है और, नित्यत्वकी व्याप्ति घटमे है। तो जैसे प्रथम भङ्गका अर्थ यह हुआ सो तो ठीक है, पर द्वितीय भङ्गमे तो बात ठीक नही बैठती। याने ससर्ग रूपसे अर्थ नही ठीक बैठता। द्वितीय वाक्यमे जो अनित्य पद दिया है उसका तो नित्य भेद अर्थ है। याने नित्यत्वका जो छेदन भेदन करे उसे अनित्य कहते हैं। तो इस प्रकारसे पर्यायरूपसे सहित नित्य भेद वाला घट है ऐसा ज्ञान द्वितीय वाक्यसे

प्राप्त होता है। जैसे कि पहिले वाक्यका अर्थ है कि द्रव्यरूपसे सहित नित्यत्व धर्मसे युक्त घट है तो द्वितीय वाक्यका अर्थ होता है कि पर्यायरूपसे सहित नित्य भेदवान् घट है। ऐसा अर्थ तो प्राप्त होता है लेकिन यह वाक्यार्थ होना अयोग्य है क्योंकि जब द्रव्यरूपसे घट नित्य है तब उसमें नित्यका भेद बाधित है। नित्य है तो नित्यका भेदन कैसा? भेद होता है व्याप्य वृत्ति वाला व्याप्य वृत्ति उसे कहते हैं जिसकी सत्ता पदार्थके सर्व देशोंमें रहे। जैसे तिलमें तैल यह व्याप्यवृत्ति है। जितना अंश तिलका है उतने ही अंशमें तैल व्याप रहा है। तो भेद होता है व्याप्यवृत्ति। इसका मायने यह है कि नित्यभेद पूरे तरहसे रहना चाहिए लेकिन नित्यमें नित्यका भेद कैसे रह सकता है? तब स्याद् अनित्य घट यह द्वितीय भङ्ग ठीक नहीं बन सकता।

भेदकी अव्याप्यवृत्तिता होनेसे स्यादनित्य घट इस द्वितीय भंगकी उत्पत्ति का समाधान—

❀

अब उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये—जो यह कहा कि भेद व्याप्यवृत्ति होता है सो यह नियम नहीं बनता। भेद अव्याप्य वृत्तिक भी होता है। देखो जैसे कहा—"मूले वृक्षः संयोगी न" याने मूल स्थानमें वृक्ष मरकट आदिकके संयोग से सहित नहीं है। जैसे वृक्षपर बन्दर आदिक चढ़ रहे हैं तो शाखायें तो बन्दरोंके संयोगसे सहित हैं मगर उस वृक्षका मूल भाग बन्दर आदिकके संयोगसे सहित नहीं है। और यह बात प्रतीतिमें आ रही है। अनेक पुरुष देखते हैं कि वृक्षोंपर बन्दर चढ़ते हैं, पर वृक्षके जड़से भी कोई बन्दर चिपकता है क्या? तो देखो वृक्ष मूलमें संयोगी न रहा। तो अब यहां भेदकी अव्याप्यवृत्तिता बन गई ना? अर्थात् यहां भेद पदार्थके एक देशमें रहा ना। संयोगीका भेद वृक्षके मूलमें है और शाखाओंमें नहीं है। वृक्ष एक है तो यहां भेद अव्यावृत्ति वाला हो गया और जो अव्याप्य वृत्तिपना है सो इस प्रकृत प्रसंगमें प्रतियोगी वृत्तिपना रूप है। प्रतियोगी वृत्तित्वका अर्थ अर्थ यह है कि जिसका अभाव कहा जाता है वह प्रतियोगी कहा जाता है। जैसे नित्य भेदका प्रतियोगी नित्य है, संयोगी भेदका संयोगी संयोगवान् वृक्ष है। प्रतियोगी कहते हैं मुकाबलेमें उल्टेको। तो संयोगके अभावका उल्टा क्या? संयोग। नित्यपनेके अभावका प्रतियोगी क्या? नित्य। तो जैसे संयोगी भेदका प्रतियोगी क्या हुआ? संयोगवान्वृक्ष। तो उसका किसी देशमें संयोगीका भेद भी पूर्ण रूपसे है। जिस देश में संयोग नहीं है वहां संयोगका अभाव पूर्णरूपसे है ना। क्योंकि शाखा आदिकमें यद्यपि वृक्ष बंदरोंसे संयुक्त है लेकिन मूल भागमें संयोग भेद विद्यमान है। वहां अन्य बन्दर आदिक नहीं हैं। इसी रीतिसे घटमें भी घटाओ। घटमें पर्यायसहित उस नित्य का भेद भी है। यद्यपि घट द्रव्य दृष्टिसे नित्य है मगर घटको ही जब पर्याय दृष्टिसे देखते हैं तो उसे एक देशमें देखा ना, तो उस एक देशमें नित्यका भेद भी है। मायने

नित्य नही है घट। जैसे वृक्ष कही सयोग है, कही सयोगका भेद है ऐसे ही घटमे द्रव्य दृष्टिमे नित्यका ससर्ग है और पर्यायदृष्टिमे नित्यका ससर्ग नही है। यो पर्याय-रूपसे देखा जाय तो नित्य भेदसे युक्त घट है ऐसा द्वितीय वाक्यका अर्थ करनेमे कोई हानि नही है। बात सीधी यह है कि द्रव्य दृष्टिसे घट नित्य है। पर्याय दृष्टिसे घट अनित्य है। एक ही घटको नित्य कह दिया तो फिर अनित्य कैसे कहा ? यह शका न करना चाहिए। नित्यत्वकी विवक्षा और है, अनित्यत्वकी विवक्षा और है। घट मे जो मृत्तिका है वह सदा रहता है। उस द्रव्यसे नित्य है और घटकी पर्याय नष्ट हो जाती है उस दृष्टिसे अनित्य है।

एकत्व धर्मके सम्बन्धमे सप्तभङ्गी—

अब एकत्व और अनेकत्वकी सप्तभङ्गी बताते हैं। प्रथम भङ्ग है स्याद एक घट दूसरा है स्याद् अनेक घट। कथचित् घट एक है और कथचित् घट अनेक हैं ये दो मूल भङ्ग हुए। याने द्रव्यरूपसे तो एक ही घट है क्योकि मृत्तिका रूप द्रव्य पिण्ड मे, कोशने, कुशुलमे सभी पर्यायोमे रहा, याने मिट्टीका लौंधा, मिट्टीका डडा और मिट्टीकी कुठिया फिर बना घट। तो जितनी पर्याये हुई उन सवमे मिट्टी अनुगत है। तो यो मिट्टी जो है वह ऊर्द्धता सामान्य रूप हुई। ऊर्द्धता सामान्य कहते है कि कलापेक्षया पूर्वोत्तर कालमें जा रहे ऐसा सामान्य। तो मिट्टीमे जो पिण्डादिक अनेक पर्यायें हुई उन सब पर्यायोमें मिट्टी रही। तो वह ऊर्द्धता सामान्यरूप रहा। यो घट स्यात् एक है और पर्यायरूपसे अनेक घट है, यद्यपि घट तो वह एक है सामने जिसके बारेमे बात कर रहे हैं लेकिन वह घट रूप, रस, गध, स्पर्श आदिक अनेक पर्यायो-रूप है। तो जिन-जिन पर्यायोरूपसे वह है उन-उन पर्यायोकी दृष्टिसे तो भिन्न-भिन्न बन गया। वही घट काला है, बुरी गंध वाला है, यो कितनी ही बातें बोलेंगे। तो उन-उन अपेक्षाओसे घट अनेक हुए। यो जब स्याद् एक स्याद अनेक ये दो मूल भङ्ग निर्बाध सिद्ध हो गए, तो स्याद् एक अनेक स्याद अवक्तव्य, स्याद एक अवक्तव्य, स्याद अनेक अवक्तव्य, स्याद अनेकानेक अवक्तव्य, ये सब भङ्ग उसमे सिद्ध हो जाते हैं।

"सर्व एक" इसमे सप्तभङ्गीके सन्देहकी शका व उसका समाधान—

अब इस प्रसंगमे शङ्काकार कहता है कि द्रव्यार्थिकनयका और पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके एक और अनेक आदिक सप्तभङ्गी मान भी ली जाय तब भी यह कैसे सगत होगी कि समस्त पदार्थ स्याद एक हैं स्याद अनेक हैं। सप्तभङ्गी तो सब जगह लगाओ। सर्व वस्तु स्याद एक स्याद अनेक यह बात उसमे सगत हो सकती, क्योकि किसी प्रकारसे सब वस्तुओकी एकता नही हो सकती। सारे पदार्थ हैं, वे एक रूप कैसे

हो जायेंगे ? यदि कोई यह कहे कि सत्त्वके रूपसे तो सब वस्तु एक हैं, चाहे जीव हो, हैं तो सभी सत्। तो उस सत्की दृष्टिसे सब वस्तुओंमे एकता हो जायगी, सो भी बात नहीं कह सकते, क्योंकि समस्त वस्तुमें व्याप करके रहने वाले एक सत्त्वको जैन सिद्धान्तने अङ्गीकार नही किया। जैसे कि मीमासक सिद्धान्तमे सत्त्व एक है और उसका समवाय सर्व पदार्थोंमे होता है। यो अलगसे कोई एक सत्त्व है और वह सर्व पदार्थोंमे व्यापक है। यह जैन सिद्धान्तके अनुसार युक्त नही है। जैन सिद्धान्तके अनुसार तो सदृश परिणमनरूप प्रति व्यक्तिमे रहने वाला सत्त्व जाति अपेक्षासे एक तथा उस उस व्यक्तिरूप सत्त्व प्रतिव्यक्तिमे भिन्न ही सिद्ध है। याने जिस दृष्टिसे सर्व पदार्थों की सदृशता जानी जाय उस दृष्टिसे एक सत् कहा है तो वह जाति अपेक्षासे है। मगर प्रत्येक पदार्थमे सत्त्व भिन्न-भिन्न ही सिद्ध है। जैसे जीवका लक्षण उपयोग है, पुद्गल का लक्षण मूर्तपना है, तो ये सब भिन्न-भिन्न ही तो रहे। हाँ सभीमे सत्त्व है, इस जातिसे एक सत्ता है, परन्तु परिणमन, अनुभवन, प्रदेश इन सबके जुदे हैं, ऐसा एक सत्त्व समस्त पदार्थोंमे व्याप करके नही रह सकता। फिर यह भङ्गी सामान्य विशेष की अपेक्षासे बनेगी कि सर्व वस्तु स्याद एक है और स्याद अनेक है।

तिर्यक् सामान्यकी अपेक्षासे सर्वमे एकत्वकी प्रसिद्धि—

❀

उपयोगो लक्षण इस सूत्रके तात्पर्यमे तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकमें बताया गया है कि उपचारसे एक ही कालमे सदृश परिणामरूप अनेक व्यक्तिमें व्यापी एक सत्त्व नहीं माना गया है। अर्थात् कोई एक ही सत् नामका पदार्थ हो और वह फिर समस्त पदार्थोंमे व्याप करके रहे ऐसा सत्त्व नही है किन्तु जो पदार्थ है वह पदार्थ स्वय सत् है और उन सब सत् पदार्थोंके इस सत्त्व धर्मको देखकर कहा जाता है कि सत्त्वकी अपेक्षा सब एक है। जैसे अनेक मनुष्योंको कहा जाता है कि मनुष्यत्वकी अपेक्षा सब एक हैं, पर वहा यह बात तो नही है कि मनुष्यत्वनामका कोई पदार्थ है और वह एक है। फिर इन मनुष्योंमे प्रवेश कर करके इन्हे मनुष्य बनाता है, ऐसा तो नहीं है। मनुष्य सब स्वय स्वतत्ररूपसे पूरे पूरे मनुष्य हैं। तो उन सब मनुष्योंमें मनुष्यताकी समानता है। इस समानताकी दृष्टिसे उपचारसे कहा जाता है कि मनुष्य एक है। तो यह केवल उपचार कथन है। वस्तुत. एक सत्ता सबमे व्यापक हो सो बात नहीं है। इस ही सम्बन्धमे परीक्षामुखसूत्रमें भी बताया है कि 'सदृशपरिणामस्तिर्यक खण्ड-मुण्डादिषु गोत्ववत्' खण्डी मुण्डी आदिक अनेक गायोंमें जैसे गोत्वके सदृश परिणाम हैं ना, तो वे प्रत्येक गायमें भिन्न-भिन्न हैं परन्तु सदृश परिणाम है उसे कहते हैं तिर्यक सामान्य। अर्द्धता सामान्य तो पूर्वोत्तर कालवर्ती पदार्थोंमे रहने वाला एक द्रव्य सामान्य ग्रहणमे आता है और तिर्यक सामान्यमे पृथक-पृथक व्यक्तियोंमे जिस सदृश धर्म द्वारा समानता बताना है उस धर्मकी समानताको कहते हैं तिर्यक सामान्य। इसके

सम्बन्धमे मार्तण्डमे खुलासा किया गया है कि सदृश परिणामरूप प्रत्येकमे भिन्न भिन्न अनेक सत्त्व तिर्यक सामान्य है। जैसे अनेक मनुष्योमे यह कहना कि मनुष्यत्व है यह तो है तिर्यक सामान्य और एक ही मनुष्यके बालकपन, जवानी, बुढ़ापा आदिक सब दशाओमे मनुष्यत्व बताना यह है अर्द्धता सामान्य। तो प्रकरणमे यह बात कही जा रही है कि समस्त वस्तु कथचित् एक है, कथचित अनेक है। तो इसमे जो एकपना बताया गया है वह सदृश परिणामका अपेक्षा कह सकेंगे, पर सभी वस्तुवें वस्तुत एक हो जायें सो नही है। एक तो वह कहलाता है जो अखण्ड होता है, ये दिखने वाले चौकी, भीट आदिक अनेक पदार्थ हैं। इनमेसे एक चौकीको ही दृष्टान्तमे ले लो तो चौकी भी एक नहीं है। पदार्थकी दृष्टिसे चौकीमे अनन्त परमाणु हैं और वे एक एक परमाणु एक एक पदार्थ हैं। तो यो यह सिद्ध हुआ कि तिर्यक सामान्यरूप सत्त्व प्रत्येक व्यक्तिमे भिन्न-भिन्न है लेकिन उपचारसे एक कह दिया जाता है।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताका वर्णन—

अब यहाँ शकाकार कहता है कि तब तो तिर्यक सामान्यरूप सत्त्व, जबकि प्रत्येक व्यक्तियोमे भिन्न है तो सर्व वस्तुमे सत्त्वकी अपेक्षासे एकता कैसे घटित होगी? तो इसके उत्तरमें सुनो कि सत्ता सामान्य एक अनेक आदिक है, ऐसा सिद्धान्तमे स्वीकार किया गया है वह किस तरह कि व्यक्तिरूपसे यद्यपि सत्त्व अनेक हैं याने जितने पदार्थ हैं उतने ही सत्त्व हैं। पदार्थ ही तो स्वयं सत् हैं। उनका जो धर्म है सो सत्त्व है। तो प्रत्येक व्यक्तिमे उनका अपना सत्त्व है। अतएव अनेक हैं, लेकिन सत्त्व अपने स्वरूपसे है यो एक है। पूर्व आचार्योंके वचनोंसे जो सत्ताको एक स्वीकार किया गया है वह सत्त्वके स्वरूपसे एक है न कि प्रति व्यक्ति एक सत्ता ही रहती है। सत्त्वका स्वरूप क्या है? उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त सत्। उत्पादव्यय ध्रौव्यसे तन्मय होता है यह है सत्त्वका स्वरूप। और प्रत्येक सत्त्वका यही स्वरूप है? यह नहीं है कि किसी पदार्थके सत्त्वका स्वरूप तो उत्पादव्यय ध्रौव्य हो और किसी व्यक्तिमें सत्त्वका स्वरूप अन्य कुछ हो। ऐसा भिन्न होनेसे सत्त्व एक कहलाता है। तब जो लोग सत्त्वको सर्वथा एक ही मानते हैं उनका ही निराकरण है न कि कथंचित् एकत्वका निराकरण है। यदि कोई पुरुष सत्त्व स्वरूपको अनेकपनमे ही माने तो पृथक्त्व एकान्त पक्षका आदर होगा। अनेक व्यक्तियोंमे समानरूपसे रहने वाले एक धर्मको यदि नही स्वीकार करते तब फिर सदृशताकी बात कहना भी असम्भव है, क्योकि सदृशता तो उसे कहते हैं कि पदार्थ तो हो भिन्न-भिन्न, किन्तु उनमे रहने वाले धर्म समान हो उसे कहते हैं सादृश्य। जैसे कोई कविजन मुखकी कल्पना चन्द्रसे करने लगते हैं तो चन्द्र तो भिन्न है, मुख भिन्न है, पर चन्द्रके दो धर्म मुखमे उपचारित किये गये है। जैसे चन्द्र एक आल्हादकारी है। अथवा जैसे उसका गोला आकार

है वैसे ही मुखका भी गोल आकार है ऐसा कुछ धर्मोकी सदृशतासे सदृशता और उपमा दी जाती है। जहाँ कही किसी भी वस्तुको किसीके समान बताया जाय वहाँ बात क्या सिद्ध होती है कि वे पदार्थ हैं तो परस्परमे भिन्न-भिन्न लेकिन उनमे रहने वाला कोई धर्म सदृश मिल जाया करता है इससे भी यह समझिये कि पदार्थ तो परस्पर वस्तुत भिन्न होते हैं पर उनमें कई धर्म सदृश हो जाते हैं इसी तरह घटत्व रूप एक धर्मको लेकर दो घटोमे परस्पर साधर्म्य माना गया है, पर प्रत्येक घटमे उनका अपना-अपना असाधारण धर्म है। कोई घट कच्चा है, कोई पक्का है। कोई अच्छी मिट्टीका है कोई साधारण मिट्टीका है। यो उन घडोमे जितने घडे हैं उतने ही उनमे अन्तर है। तो वे परस्परमे अत्यन्त भिन्न हैं और अपने अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यको लिये हुये हैं। किसी भी घडेका उत्पादव्यय अन्य कोई घडा नही कर रहा है। यो भिन्न-भिन्न होनेपर भी घटत्वकी अपेक्षा वे समान हैं इसलिए कथचित् एक भी कहा गया है। वस्तुत तो वे घट अनेक हैं। अथवा एक ही घटमे उनके परखनेके साधन भिन्न-भिन्न हैं ना! चक्षुके द्वारा रूप देखा जाता है, घ्राणके द्वारा गध जाना जाता है, तो यो परखनेके भेदसे अनेक घट हो सकते हैं।

साधारण और असाधारण धर्मकी अपेक्षासे सबके ऐक्य और अनैक्यकी सिद्धि—

ॐ

यहाँ प्रसगकी बात यह चल रही है कि शङ्काकारने यह शकाकी थी कि समस्त वस्तुवें कथचित एक हैं, कथचित अनेक हैं। ऐसी भी तो सप्तभङ्गी लगना चाहिए और तब एक कैसे बन गये समस्त पदार्थ ? उसका उत्तर दिया जा रहा है कि उपचारसे एक बन गया है अर्थात् जो धर्म समस्त पदार्थोमे समानतासे पाया जाय उस धर्मकी अपेक्षासे वस्तु सब एक हैं। यों यदि सदृश धर्मकी अपेक्षा एक नही माना जाय तो फिर साधारण धर्म और असाधारण धर्मका अन्तर ही क्या ? इसका कथन ही कैसे बन सकेगा ? साधारणपना कहते ही उसे हैं कि अनेक व्यक्तियोंमे अन्वयरूपसे जो रहे। जैसे जितने भी जीव हैं उन सब जीवोमे उपयोग सामान्य साधारणरूपसे रह रहा है और उपयोग सामान्य साधारणरूपसे रह रहा है और उपयोग विशेष यह असाधारणरूपसे रह रहा है। अथवा समस्त पदार्थोंमे साधारणरूपसे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व ये ६ धर्म रहते हैं इसी कारण इन ६ धर्मोंको साधारण धर्म कहा गया है। तो साधारणत्वके कथन से भी यही सिद्ध होता है कि प्रत्येक भिन्न-भिन्न व्यक्तियोमे अनुगत रूपसे जो धर्म रहता है उसे साधारण धर्म कहते हैं। यो सत्त्व नामक साधारण धर्मकी अपेक्षासे समस्त वस्तुओंको एक कहा गया है। और, यो सब वस्तुवें कथचित एक हैं और कथचित् अनेक हैं यह बात सिद्ध हो जाती है। अनेक तो हैं ही, इसमे कोई विशेष-

प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रत्येक वस्तुका अपने आपमे जुदा-जुदा परिणमन है। और, वे समस्त पदार्थ एक हैं उपचारसे अर्थात् जो साधारण धर्म उन सब पदार्थोमे है जैसे सत्त्व, द्रव्यत्व वस्तुत्व आदिक उनकी अपेक्षासे सभी वस्तुवें एक हैं। इसी बातको स्वामी समतभद्राचार्यने आप्तमीमासामे बताया है कि "सत्सामान्यात्तु सर्वैक्य पृथग्द्रव्यादिभेदत। भेदाभेदविवक्षायामसाधारणहेतुवत्"। भेद अभेदकी विवक्षामें असाधारण हेतुके समान उस सामान्यसे सबकी एकता है और द्रव्यादिकके भेदसे पृथकता भी है अर्थात् द्रव्य तो पृथक पृथक हैं, उनका उत्पादव्ययध्रौव्य उनका उनमे ही पृथक पृथक है, इस दृष्टिसे तो वे अपनी अपनी आवान्तर सत्ता लिए हुए हैं, लेकिन सत्ता सामान्यकी अपेक्षासे देखा जाय तो सब एक है। तो परमार्थत विचार करनेपर तो यह सिद्धान्त होता है कि जो परिणमन जिसमे अभेदरूपसे होता है बस वह एक पदार्थ है। यो अपने आपके स्वरूपसे परिणमने वाले पदार्थ एक-एक हैं। उनमे सदृश धर्मको निरख करके कहा जाता है कि ये सब पदार्थ एक हैं। यो सब वस्तुओमे भी स्याद् एक स्याद अनेक इस प्रकारके भग घटित हो जाते हैं।

'एव स्यादेक स्यादनेक' की उदाहरणपूर्वक सिद्धि—

❀

स्याद् एक अनेकके बोधके लिए एक उदाहरण है—हेतुपक्षधर्मत्व आदिक भेद विवक्षामे अनेक हैं और हेतुपनेकी अपेक्षासे एक हैं। हेतुमे पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति ऐसे ३ धर्म माने गए हैं। तो हेतुमे इन ३ धर्मोको देखा जाय तो पृथक पृथक धर्मके आश्रयमे हेतु पृथक पृथक रूपसे विदित होंगे। और, तब हेतु अनेक हो गया। फिर भी वे तीन प्रकारके हेतु जो उदाहरण रूपमे कहे हैं जिसमे पक्षधर्मत्व है व जिसमे सपक्ष सत्त्व है व जिसमें विपक्षव्यावृत्ति है, ये तीनो ही हेतु ही तो हैं। सो वे एक ही तो हैं। यो हेतुरूपसे देखनेपर वह एक है। इसी प्रकार सर्व सत् एक अनेक, सबको सत्वकी ओरसे देखा तो सत्वकी अपेक्षासे सारा विश्व एक है, पर जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य यो द्रव्यादिकके भेदसे वे अनेक हैं। इस प्रसङ्गमें एकका भेदवान् द्वितीय भङ्ग है, यह भी बात घटित कर सकेंगे कि जैसे स्याद् नित्य और स्याद् अनित्य इस प्रयोगमे की हुई शङ्काके समाधानमे कहा था। यहाँ भी यह शङ्का की जा सकती है कि हेतु कथचित् एक है और कथचित् अनेक है इसका अर्थ है एकका भेद हो गया, एकत्वको खतम कर दिया तो एकका जो भेदन है सो वहाँ यह बोला जायगा कि पर्यायसे सहित एकका भेदवान हेतु है। तो यह अर्थ तो अयुक्त रहेगा, क्योंकि जो एक है उसमे एकका भेद कैसे बनेगा ? क्योंकि भेद तो व्याप्यवृत्ति होती है। जितना एक है उस सबमे ही एकका भेदन रहे तो यह कैसे सम्भव है ? ऐसी शङ्काका उत्तर पूर्ववत् ही यो दिया जायगा कि पर्यायसे सहित है, इस रूपसे भेद है। जैसे वृक्ष उन शाखा आदिकमे सय गी है।

वहाँ बन्दर आदिक चढ़े हुए हैं और इसके मूल देशमें सयोगी भेद है। तो भेदवान व्याप्यवृत्ति ही हो यह नियम नहीं है। वह एक देशमें होना, बल्कि भेद प्राय अव्या वृत्ति ही होता है। तो यो स्याद् एकके साथ लगा हुआ जो स्याद् अनेक नामका दूसरा भङ्ग है उसका वाक्यार्थ ठीक ही घटित हो जाता है।

"स्याज्जीव स्यादजीव" सम्बन्धी सप्तभङ्गी—

ॐ

अब जैसे अब तक अनेक प्रकारकी सप्तभङ्गियाँ दिखाई गई हैं उनमेंसे एक सप्तभङ्गी जीवके सम्बन्धमें भी बताते हैं। यो कहना कि यह कथचित् जीव है और कथचित् अजीव है, ये मूलमें दो भग हुए। इनका वाक्यार्थ क्या हुआ ? कि देखा ! उपयोगरूपसे तो यह जीव है और प्रमेयत्वादिक अन्य धर्मोंके रूपमें यह अजीव है ऐसा अकलङ्क स्वामीने भी बताया है कि 'प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मक । ज्ञान-दर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मक ।' प्रमेयत्वादिक धर्मोंमें तो जीव अचेतनरूप है और ज्ञानदर्शन उपयोगसे जीव अचेतनरूप है। यो यह जीव चेतनस्वरूप और अचेतनस्वरूप दोनों प्रकारसे परखा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव एक द्रव्य है। द्रव्यमें साधा-रण गुण और असाधारण गुण रहा करते हैं। तो जीवमें जो असाधारण गुण है वह तो है चेतन। उसकी दृष्टिसे तो यह पदार्थ जीव है और उसमें जो साधारण गुण हैं अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदिक तो ये धर्म जैसे अचेतनमें रहते हैं ऐसे ही इस जीव में भी रहें। दूसरी बात यह है कि इन धर्मोंका स्वयका स्वरूप चैतन्यात्मक नहीं है। अस्तित्वका स्वरूप सत्ता कायम करना है। वस्तुत्वका स्वरूप स्वद्रव्यसे होना, परद्रव्य से न होना। प्रमेयत्व धर्मका स्वरूप ज्ञानमें ज्ञेय बन जाना है। तो यह सब स्वय चिदात्मक नहीं हैं। तो यो इन धर्मोंकी दृष्टिसे देखनेपर यही जीव चेतनात्मक विदित न हुआ, तब ये दो भग हुए कि कथचित् यह जीव है और कथचित् यह अजीव है। इस प्रसगमें अजीववृत्तिक प्रमेयत्वादिक धर्मों वाला होना, यह तो है अजीवपना याने प्रमेयत्वादिक धर्म अजीवमें रहते हैं और उन प्रमेयत्वादिक धर्मोंसे युक्त यह है तो यह भी अजीव दीख गया। और, जीवत्वके मायने है ज्ञानदर्शनादिक स्वरूप होना। तो यो यह पदार्थ कथचित् जीव है और कथचित् अजीव है, इस प्रकार मूलके दो भग सिद्ध होना चाहिए फिर तो शेष ५ भी उसके बन जाते हैं। तब इसकी सप्तभगी इस प्रकार हुई कि यह कथचित् जीव है, कथचित् अजीव है, कथचित् जीव और अजीव है कथचित् अवक्तव्य है, कथचित् जीव अवक्तव्य है, कथचित् अजीव अवक्तव्य है, और कथचित् अजीव अवक्तव्य है और कथचित् जीव अजीव अवक्तव्य है।

अनेकान्तवादमें छलक सन्देहका अनवकाश—

ॐ

यहाँ शङ्काकार कहता है कि यह अनेकान्तवाद तो हमें कोरा छल ही दिख

रहा है। यो बोलना कि वही है, वही नही है, वही नित्य है, वही अनित्य है इस तरह की तो निरूपणाये की जा रही है अनेकान्तवादमे । यह तो छल मात्र जचता है। इसके समाधानमे कहते है कि अनेकान्तवादको छल मात्र कहनेकी बात युक्तिपूर्ण नही है, क्योकि इसमे छलका लक्षण घटित नही होता। छलका लक्षण यह है कि अन्य अभिप्रायसे तो बात कही गई और अब उस कथित बातका अर्थ दूसरा रचकर दूषण दिया जाय तो वह छल कहलाता है। याने बात कही हो किसीने किसी अभिप्रायसे और अर्थ लगा देवे अन्य अभिप्रायका, और फिर दूषण देवे तो यह छल है। जैसे किसी ने कहा कि नवकम्बल अय देवदत्त ? जिसका प्रकृत अर्थ यह है कि देवदत्त कोई नया कम्बल ओढकर आया हुआ था उसे देखकर किसीने कहा कि यह देवदत्त नवकम्बल वाला है याने नये कम्बल वाला है नव यहाँ नवके दो अर्थ होते हैं। एक नवका अर्थ है नया और एक नवका अर्थ है सख्याके ९। तो उसने तो कहा कि यह नवकम्बल वाला है अर्थात् नये कम्बल वाला है। तो कोई दूसरा उसे नीचा दिखानेके लिए कह उठता है—वाह रे वाह तुम कैसा असत्य कह रहे हो। देवदत्त तो बेचारा गरीब है। उसके पास तो दो कम्बल भी नही हैं और तुम कह रहे कि देवदत्त ९ कम्बल वाला है। तो देखो यहाँ दोनोके अभिप्रायमे ही भेद है। एकका अभिप्राय है नव अर्थात् नये कम्बल वाला और एकका अभिप्राय है नव अर्थात् ९ कम्बल वाला। तो यह कहलाया छल कि कहा तो यह कहलाया छल कि कहा तो किसी अभिप्रायमे कुछ और अर्थ लगाया किसी अन्य अभिप्रायसे दूसरा। तो उस दूसरे अभिप्रायकी बात उपस्थित करके उसे दूषित ठहराना यह है छल। लेकिन, अनेकान्तवादमे इस प्रकारका छल लक्षणका प्रसग ही नही है, क्योकि अनेकान्तवादमे यह पद्धति नही है कि किसी अभिप्रायसे कोई शब्द बोला जाय और उसका अर्थ दूसरा बनाया जाय। वहाँ तो केवल स्यात् शब्द लगाकर यह स्पष्ट सकेत कर दिया जाता कि यह अमुक दृष्टिमे ऐसा ही है। तो छलका लक्षण अनेकान्तवादमे घटित न होनेसे इसको छलमात्र नही कह सकते अनेकान्तवाद तो स्पष्ट एक प्रमाणभूत पद्धति है। जिसके बलसे पदार्थका यथार्थ निर्णय होता है। कभी कोई यह कहे किसी एक देवदत्तके प्रति कि यह पिता है। बडा हो जानेपर, उम्रमे उस लडकेसे अधिक होनेपर लोग कहते हैं कि अब तो यह बाप बन गया। तो यह बाप भी है और यह बेटा भी है, यह तो एक छलकी बात है। सो इसमे छल जरा भी नही परिचयी लोग उसका स्पष्ट अर्थ लगा लेते हैं कि उत्पन्न हुए लडके की अपेक्षासे तो यह पिता है और अपने पिताकी अपेक्षासे यह पुत्र है। तो छलकी बात यहाँ नही है। इसी प्रकार अनेकान्तवादमे स्यात् शब्द कहकर सब स्पष्ट कर दिया जाता है कि इस अपेक्षासे यह तत्त्व है। तो अनेकान्तवादमे इस छलका कोई अवकाश नही है।

अनेकान्तको सशयहेतुता माननेकी शका—

ॐ

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि अनेकान्तवाद तो संशयका कारण है, क्योंकि एक वस्तुमे विरोधी अस्तित्व नास्तित्व आदिक धर्म सम्भव ही नहीं हैं। संशयका लक्षण यह है कि एक वस्तुका विशेष्य करके उसमे विरुद्ध नाना धर्मोके प्रकारका ज्ञान करना सो संशय है। जैसे सुबह कुछ अंधेरे उजेलेके समयमें कोई पुरुष घूमने गया, उसे बहुत दूरसे कोई ऊचीसी चीज दीखी, वह पुरुष जैसी चीज भी हो सकती थी अब वहा उसे इस प्रकारका ज्ञान बन रहा है कि यह ठूठ है या नहीं, तो यहाँ देखिये! कि एक धर्मीको तो विशेष्य बनाया। जो कुछ पदार्थ आँखो दिख रहा है वह तो है विशेष जिसको कि यह कहकर बताया है ठूठ है या नही। तो यह कहकर जिसका परिज्ञान किया गया है वह तो है एक धर्मी विशेष। अब उसमें स्थाणुपना है या उसका अभाव है इस तरहका ज्ञान बन रहा है तो यह संशयज्ञान हुआ। एक विशेष्य पदार्थमें विरुद्ध धर्मको विशेषणरूपमे ज्ञान करनेका नाम संशयज्ञान है, तो इसीप्रकार अस्तित्व नास्तित्व आदिक विरुद्ध धर्म भी तो हुए विशेषण और उन विशेषणोंमे सहित घट आदिक पदार्थ विशेष्यका ज्ञान किया गया तो यहाँ इस ढगका जो अनेकान्तवाद कहा है वह तो संशयका कारण है। अत अनेकान्तवाद कोई संयुक्त शासन और पद्धति नही है।

अनेकान्तमे संशयका लक्षण घटित न होनेसे संशयहेतुका अभाव—

अब उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि अनेकान्तवादको संशय हेतु बताना अथवा वह संशयका कारण है, ऐसा संशय करना योग्य नहीं है, क्योंकि संशयका जो विशेष लक्षण है वह यहाँ नहीं पाया जाता। यहाँ तो अनेकान्तवादमे निश्चयात्मक विशेष लक्षण पाया जाता है। देखिये! संशयज्ञान होता कब है कि सामान्यका तो प्रत्यक्ष हो अर्थात् जो उन दोनो विषयणोमें सर्व सम्भव हो उसका तो हो रहा हो प्रत्यक्ष। याने जिन दो तत्त्वोका संदेह किया गया है उन दोमें प्रतिव्यक्ति अलग-अलग जो विशेषधर्म पाये जा सकते हैं उन विशेष धर्मोंका ज्ञान हो नही रहा, लेकिन उन विशेष धर्मोंकी स्मृति हो रही है। उस समयमे संशयज्ञान होता है। जैसे उस वस्तुमे ठूठ अथवा पुरुष दोनों ही सम्भव हो सकते हैं तो जहाँ न अधिक प्रकाश है न अधकार है ऐसे मलित समयमे किसी पुरुषको एक ऊचा ऊचा सा दीखा तो यह ऊचापन तो सामान्य हुआ। उतनी ऊचाई ठूठमें भी सम्भव है और पुरुषमे भी। तो दोनोंमे सम्भव हो सकने वाली ऊचाईको तो देख लिया। अब उन दोनोमें जो असाधारण धर्म है, जैसे ठूठके धर्म हैं। कुछ टेढा टाढा सा कोटर होना, उसमे पक्षियोका घोसला होना आदिक जो कुछ विशेष ठूठके हो सकते हैं उनको इस पुरुषने नहीं देखा। वे जाननेमें नही आये। अथवा पुरुषमे जो विशेष धर्म हो सकते हैं कि कोई वस्तु धारण किए हो, चोटी हो, हाथ पैर हो। ऐसे कुछ विशेष भी वहा जाननेमें नही आये लेकिन उन

दोनोका स्मरण जरूर है कि ठूठमे यह धर्म होता है। तो ऐसी स्थितिमे जहाँ पुरुष और ठूठ दोनोमे पाये जाने वाले साधारण धर्मका तो प्रत्यक्ष हो रहा है और दोनोंमे विशेष पाये जाने वाले लक्षणका वहाँ ज्ञान नही हो रहा किन्तु विशेष लक्षणका स्मरण हो रहा तो वहाँ सशयज्ञान बना लेकिन अनेकान्तवादमे तो विशेष लक्षणकी उपलब्धि निश्चितरूपसे हो रही है। सशयज्ञान तो वहा बनता कि सामान्य ज्ञानकी उपलब्धि हो विशेष लक्षणकी उपलब्धि हो विशेष लक्षणकी उपलब्धि न हो, और दोनो विशेष लक्षणोकी स्मृति हो, किन्तु अनेकान्तवादमे तो विशेष लक्षणकी उपलब्धि तो स्पष्ट और निर्वाध हो रही है, क्योकि स्याद्वादसे प्रत्येक अर्थमें अपने स्वरूप और परके रूप इन विशेषोकी स्पष्ट उपलब्धि है इस कारण अनेकान्तवादमे सशय का कारण नही कहा जा सकता। क्योकि अनेकान्तवादमे बिल्कुल स्पष्ट विशेषकी उपलब्धि है। जब कहा स्यादनित्य घट तो निश्चयरूपसे यह कहा गया है कि द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे घट नित्य ही है। एवकार शब्दसे भी प्रयोग है। जो निश्चय का सूचक है। स्याद अनित्य घट पर्याय दृष्टिकी अपेक्षासे घट अनित्य ही है। अब इसमे सशयका स्थान क्या ? जो विशेष लक्षण है उनकी स्पष्ट उपलब्धि है और एवकार शब्द देकर उनका पूर्ण निश्चय कराया गया है। इस कारण अनेकान्तवादमे सशयका अवकाश नही है।

अनेकान्तमे विशेष लक्षणकी उपलब्धि माननेपर सशयकी दुर्निवारताकी आशका—

❀

अब शकाकार कहता है कि विशेष लक्षणकी उपलब्धि भी मान ली जाय अनेकान्तवादमे तब भी सशयका निराकरण करना कठिन है। सशय तो यहा सिद्ध होना ही है। जैसे बतलाओ घट आदिक पदार्थमें अस्तित्व आदिक धर्मोके साधक प्रतिनियत हेतु है या नही ? यदि कहोगे कि घट आदिकमे अस्तित्वादिक धर्मोके साधक कोई प्रतिनियत हेतु नही है तब तो जिसमे कोई हेतु नही, जो विवाद ग्रस्त है उसका तो प्रतिपादन ही नही हो सकता। और जिसका प्रतिपादन नही हो सकता उसके सम्बन्धमे निश्चय, चर्चा मार्ग आदिक कुछ नही बताया जा सकता। यदि कहो कि घट आदिक पदार्थोका अस्तित्व आदिक धर्मोके साधक प्रतिनियत हेतु हैं तो संशय तो अपने आप सिद्ध हो गया। क्योकि एक वस्तुमे परस्पर विरुद्ध अस्तित्व और नास्तित्व आदिक धर्मोके साधक हेतु पाये जा रहे हैं। वस्तु है एक और उसमें अस्तित्वको सिद्ध करने वाला भी हेतु है और नास्तित्वको सिद्ध करने वाला भी हेतु है। तो जब परस्पर विरुद्ध धर्मकी सिद्धि करने वाले हेतु पाये जा रहे हैं तब तो सशय दुर्निवार हो गया। जैसे उस विवादापन्न ऊ ची चीजमें कुछ लक्षण पाये जायें, ठूठके और कुछ लक्षण पाये जा रहे पुरुषके हैं, अथवा ठूठके भी लक्षण ज्ञात हो रहे हैं

तब तो संशय होगा ही । यों ही एक वस्तुमें अस्तित्व धर्मके हेतु भी पाये जा रहे हैं और नास्तित्व धर्मके हेतु भी पाये जा रहे हैं । तब यह संशय होना तो बिल्कुल ही दुर्निवार है । संशयका निवारण नही किया जा सकता ।

अवच्छेदक भेदकी अर्पणामे परस्पर विरुद्ध लक्षण वाले धर्मोंका एक धर्मी मे अविरोध होनेसे अनेकान्तवादमे संशयका अनवकाश—

ॐ

अब उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि विशेष लक्षणके साधक हेतु बताकर संशयका बात लगाना युक्त नही है क्योंकि अस्तित्व और नास्तित्वका पृथक् करने वाले भेदके द्वारा जब उनकी विवक्षा की जाती है तब इनमे विरोध नही रहता । जैसे कि एक ही देवदत्तमे एककी अपेक्षासे पितापन कहना और अन्यकी अपेक्षासे पुत्रपन कहना ये दोनो ही परस्पर विरोधरहित हैं । जैसे देवदत्तके पुत्रका नाम हो यज्ञदत्त और देवदत्तके पिताका नाम हो सोमदत्त तो अब यज्ञदत्तकी अपेक्षासे तो देवदत्त पिता हुआ और सोमदत्तकी अपेक्षासे देवदत्त पुत्र हुआ । अब उस एक देवदत्त मे पितापन भी आ जाना और पुत्रपन भी आ जाना, इसमें क्या कुछ विरोध है ? कुछ भी विरोध नही । क्योंकि पितापन और पुत्रपनको पृथक् करने वाले भेद उसकी दृष्टिमे हैं अथवा देखिये जो हेतु अन्वय व्यतिरेकी होता है अर्थात् जिस हेतुका अन्वय व्यतिरेकी दृष्टान्त, अन्वय व्याप्ति व्यतिरेक व्याप्ति बनती है उस हेतुका तो सपक्ष सत्त्व है । और विपक्षासत्त्व भी है । तो क्या ये दोनो विरुद्ध हैं ? ये परस्पर अविरुद्ध हैं । जैसे अनुमान किया गया कि इस पर्वतमे अग्नि होनी चाहिए धुवा होने से । तो यहा हेतु दिया गया है धुवां, यह हेतु अन्वय व्यतिरेकी है । इसका अन्वय व्याप्तिमे भी दृष्टान्त है और व्यतिरेक व्याप्तिमे भी दृष्टान्त है । अन्वय व्याप्ति बन गया जहा जहा धुवा होता है वहा-वहा अग्नि होती है, जैसे रसोईघर । तो देखो—यहा अन्वय दृष्टान्तमें याने सपक्षमे हेतुका पाया जाना बना ना । और जब इसकी व्यतिरेक व्याप्ति बतायी जाती है, जहा अग्नि नही होती है वहाँ धुवां भी नहीं होता है । जैसे कि तालाब । वहा अग्नि नही धुवा भी नही । तो इस हेतुका विपक्ष है तालाब । जहा साध्यका अभाव पाया जाय उसे विपक्ष कहते हैं तो विपक्षमे धुवां का असत्त्व है । तो हेतुका सपक्षमे सत्त्व होना और विपक्षमे असत्त्व होना । ये दोनो बातें परस्परमे विरुद्ध हैं अर्थात् उस हेतुमे पाये जा रहे हैं । सपक्ष सत्त्व और विपक्षा-सत्त्व इन दोनोको पृथक् करने वाला कोई भेद दृष्टिमें बताकर मौजूद है । उस उस अपेक्षासे इन दोनोंमे परस्पर कोई विरोध नही हैं । इसी प्रकार समझना चाहिए कि अस्तित्व और नास्तित्वमें भी परस्पर कोई विरोध नही है । घट अपने स्वरूपसे है पर रूपसे नही है । तो यहा अस्तित्वको तो सिद्ध किया गया है स्वरूपसे और नास्तित्वको सिद्ध किया गया है पररूपसे । तो अस्तित्व और नास्तित्वको पृथक् कर

देने वाला अर्थात् अस्तित्वसे पृथक् है नास्तित्व और नास्तित्वसे पृथक् है अस्तित्व ऐसे। किसने बताया ? स्वरूप और पररूपने। अस्तित्वका सम्बन्ध स्वरूपसे है पररूपसे नही। अस्तित्वका सम्बन्ध स्वरूपसे है पररूपसे नही। नास्तित्वका सम्बन्ध पररूपसे है, स्वरूपसे नही। इस प्रकार दोनोको पृथक् कर देने वाले स्वरूप और पररूप की जब विवक्षा होती है तो उस विवक्षामे अस्तित्व और नास्तित्व एक वस्तुमे बराबर सिद्ध हो जाता है। उनमे परस्परमे किसी भी प्रकारका विरोध नही है। विरोधकी बात तो दूर जाने दो। बल्कि यह बात वहाँ पायी जाती है कि इन दोनोमेसे यदि एक न हो, दूसरा भी न रहेगा। जैसे घट स्वरूपसे है, पर रूपसे नही है। घट घडेके रूपसे है, कपडाके रूपसे नही है। अब इनमेसे किसको मना करोगे ? यदि कहोगे कि घट घडारूपसे है, यह बात गलत है। तो लो घडा ही कुछ न रहा। यदि कहोगे कि कपडा, रूपसे नही है यह गलत है तो अर्थ हुआ कि वह कपडा रूपसे हो गया। फिर वह घडा कह रहा तो अस्तित्व और नास्तित्वका विवक्षावश कोई विरोध नहीं, अत अनेकान्तवादमे सशयके लिए स्थान नही है

शकाकार द्वारा प्रस्तोतव्य विरोधादि और दोनोमे प्रस्तुत विरोध दोष—

❀

शकाकार कहता है कि अनेकान्तवादमे तो विरोध आदिक ८ दोष सम्भव हैं। वे ८ दोष ये हैं–विरोध वैयाधिकरण्य, अनवस्था, सकट व्यतिकर, सशय, अप्रतिपत्ति और अभाव। उनमेसे विरोध दोषकी बात सुनो ! देखिये ! एक वस्तुमे विधि और प्रतिपेधरूप अस्तित्व एव नास्तित्व धर्म सम्भव नही होते हैं, क्योकि भाव और अभाव का परस्परमे विरोध है। जैसे कि ठड और गर्मीका परस्परमे विरोध है जहाँ ठढा है वहाँ गर्म नही, जहाँ गर्म है वहाँ ठढ़ा नही, जैसे ही जिस पदार्थमे अस्तित्व है उस पदार्थमे नास्तित्व नही रह सकता, और जहाँ नास्तित्व है वहाँ अस्तित्व नही रहता, क्योकि अस्तित्व तो है भावरूप, जो कि विधि पद्धतिसे ज्ञानका विषय होता है, और नास्तित्व है प्रतिपेधरूप जोकि वहाँ इस शब्दसे समझी गई प्रतीतिका विषय है। तो जहाँ अस्तित्वका विरोध है, वहाँ अस्तित्वका अविरोध है। यो एक पदार्थमे अस्तित्व और नास्तित्वका विरोध है अत सप्त भगीमे स्यात अस्ति, स्यादनास्ति ये भग ही नही बनते। एक बात कुछ कहना चाहिए। दो धर्म एक वस्तुमे सम्भव नहीं हो सकते।

एक वस्तुमे सत्त्व असत्त्व आदि नाना धर्मोके विरोधका परिहार—

❀

अब उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि देखिये ! जब किसी अपेक्षासे वस्तुमे अस्तित्व और नास्तित्व प्रतिभासमान हो रहे हैं तब उनका विरोध कैसे कहा जा सकता है। सभी जन जानते हैं कि घट अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है। तब

दोनो बातें बराबर उपयुक्त हो रही हैं, तो उनका विरोध कैसे कहा जा सकता है ? विरोध होता है अनुपलम्भ द्वारा साध्य, अर्थात् वह यदि एक जगह नही मिलता है तो समझिये कि विरोध हैं। जैसे जिन जानवरोमे विरोध है वे एक जगह कहाँ मिलकर रहते हैं ? किन्तु भाव और अभाव ये तो एक वस्तुमे प्रतीत हो रहे हैं। घट अपने स्वरूपसे है पररूपसे नही है यह बात तब प्रतीत हो रही है, जिस ही समय स्वरूपादिकसे वस्तुकी सत्ता पायी जा रही-है उसी समय पररूपादिकसे असत्त्व भी पाया जा रहा है, क्योंकि जैसे स्वरूपसे सत्त्व है इसी प्रकार पररूपसे असत्त्व है, यह बात प्रतीति सिद्ध है। एक ही समय भाव और अभाव एक वस्तुमे पाये जा रहे हैं फिर उनमे विरोध कैसा ? देखिये ! वस्तु सत्तात्मक ही है, भाव भावरूप ही है यदि वस्तुको सर्व प्रकारसे भावरूप मान लिया जाय तो स्वरूपकी तरह पररूपसे भी उसका भाव बन बैठेगा। जैसे स्वरूपसे घट है इसी प्रकार पररूपसे भी घट बन बैठेगा। फिर कुछ रहा ही नही। इससे दोनो बातें माननी होगी कि स्वरूपसे तो अस्तित्त्व है। पररूपसे नास्तित्त्व है, सर्वथा अस्तित्व ही है, यह बात भी नही मान सकते। इसी प्रकार यह भी नही माना जा सकता कि वस्तुका स्वरूप सर्वथा अभाव ही है। यदि वस्तुका अभाव ही स्वरूप कहा जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि जैसे घट पररूपमे नहीं है इसी तरह स्वरूपसे भी नही है, यह बात बन बैठेगी। इस कारण बोला गया कि वस्तुका सर्वथा अभाव ही स्वरूप नहीं है। वस्तु भावाभावात्मक है और वे दोनो बातें एक पदार्थमे एक साथ पायी जाती हैं इस कारण उनमे विरोधकी बात नही कही जा सकती।

घट है पटादि नही है यों प्रयोगका औचित्य बताकर शकाकार द्वारा द्वितीय भङ्गको भङ्ग करनेका प्रस्ताव—

❀

अब शकाकार कहता है कि देखिये ! पररूपसे असत्व होनेका नाम तो पररूप से असत्व है इसका अर्थ क्या है ? पररूपका असत्त्व। सो घटमे पटस्वरूपका अभाव होनेपर घट नही है यह नही कहा जा सकता, किन्तु यह कहना चाहिए कि पट नही है। जैसे कथंचित् घट है। जैसे कथचित् घट है तो कथचित घट नहीं है। इस तरह दूसरी बात न कहना चाहिए, किन्तु पट नही है यो कहना चाहिए। जैसे कि कमरेमें घटका अभाव है तो उस समय यह कहा जाता ना कि कमरेमे घट नही है कि यो ही कोई कह बैठता कि कमरा नहीं है। तो जैसे कमरेमें घट नहीं है इस तरहके वाक्य की प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार घटमें पटका स्वरूप नही है। तो यो कहना चाहिए कि पट नहीं है। उसको यों क्यो कर रहे हो कि कथचित् घट है और कथचित् घट नही है। घट है पट नही है, इस तरहसे प्रयोग होना चाहिए। तो आपके दोनो प्रयोग बन जाते हैं। यो प्रयोग न करके घट है, घट नही है, यो दूसरा प्रयोग उचित

हुआ कि घट नही है। यो घट भावाभावस्वरूप है इसके विरोधकी कल्पना अयुक्त है।

घटनिष्ठाभावप्रतियोगिताके कारण भी पररूपाभावकी घटधर्मतासे अविरोध

❀

अब शङ्काकार कहता है कि घटमे पररूपके असत्त्वका अर्थ यह है कि घटमें रहने वाले अभावकी प्रतियोगिता और जो घटमे रहने वाले अभावकी प्रतियोगिता है वह पटका धर्म है। घटमे रहने वाले अभावका प्रतियोगी घट है। प्रतियोगी कहते हैं मुकाबलेमे एक विरोधीको। याने घटका अभाव मायने घट तो घटके अभावका प्रतियोगी है पट तो पटरूपसे असत्त्व होनेका जो अर्थ है अर्थात् घटमे रहने वाले अभावका प्रतियोगी होना यह पटका धर्म है। जैसे कि कमरेमे घट नही है, इस प्रयोगमें कमरे मे घट नहीं है, इसका भाव क्या हुआ कि कमरेमे रहने वाले अभावकी प्रतियोगिता है और उस हीका नाम है कमरेमे नही है। सो कमरेमे रहने वाले अभावकी प्रतियोगिता घटका धर्म है। कमरेमे जो अभाव है उस अभावका प्रतियोगी घट हुआ। तो ऐसे ही घटमे पटरूपका असत्त्व है। इसका अर्थ हुआ कि घटमे रहने वाले अभावकी प्रतियोगिता है और वह प्रतियोगिता पटका धर्म है। उक्त शङ्काके उत्तरमे कहते हैं कि यह भी शङ्का युक्त नही है। भले ही अर्थ यह हुआ कि पटरूपसे असत्त्वका नाम है घटमे रहने वाले अभावकी प्रतियोगिता। तो इस तरह कहकर भी पररूपका जो अभाव है वह घटका धर्म है, इसमे तो विरोध नही आया। जैसे कि कमरेमे घटका अभाव है तो ऐसे घटका अभाव कमरेका धर्म है, इसमे भी कोई विरोध नहीं आता। सो अथ किसी ढगसे ही बनाया जाय पर यह बात अविरुद्ध है कि वस्तुमें पररूपका अभाव है। और, वह पररूपका अभाव उस प्रकृत वस्तुका धर्म है। तो ऐसा सिद्धान्त सिद्ध होनेपर यह सिद्ध हुआ कि घट भावाभावस्वरूप है। घट सद्भाव स्वरूप है और अभावरूप भी है। स्वरूपसे तो सद्भावरूप है और पररूपसे अभावरूप है। इस तरह घट भावरूप अभावरूप और उभयरूप सिद्ध हो जाता है। कथचित् तादात्म्यरूप जो सम्बन्ध है वह सम्बन्धीका ही स्वधर्म है। घटका सद्भावस्वरूपसे सत्त्वका होना यह घटमे कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे है। घटमें पररूपका न होना इस प्रकारका अभाव स्वरूप धर्म घटमे कथञ्चित तादात्म्यरूपसे है। यो भावस्वरूप होना अभाव स्वरूप होना ये घटके धर्म हैं तब उक्त शङ्का युक्त नहीं ठहरती कि घटमें पररूपका असत्व पररूप का धर्म है।

द्वितीय भङ्गमे "घट नही है" इस प्रकारकी योजनाके औचित्यकी पुन आरेका—

❀

शङ्काकार कहता है कि चलो इस तरहसे घटका भावस्वरूप और अभावस्व-

रूप यो उभय धर्मत्व सिद्ध करलो इतनेपर भी घट है पट नहीं है, प्रयोग तो ऐसा ही करना चाहिए, क्योंकि पटके अभावका प्रतिपादन करनेमे तत्पर जो वाक्य होगा उसकी प्रवृत्ति इस ही तरह होती है, जैसे कमरेमे घट नहीं है इस वाक्यका प्रयोग इस कथन मे करनेकी प्रवृत्ति हो रही है कि घटका अभाव है, न कि भूतल नहीं है इस रीतिसे प्रयोग होता है। कमरेमे घट नहीं है, इसका अर्थ यह है कि कमरेमे घटका अभाव है तो इस बातको बतानेके लिए प्रयोग यो ही तो किया जायगा कि कमरेमे घट नहीं है। यो तो कोई प्रयोग नहीं करता कि कमरा नहीं है, ऐसे ही घटमे पट नहीं है। घटमे पररूपताका अभाव है, यह बतानेके लिए यह ही तो कहना चाहिए कि पट नहीं है। यो तो न कहना चाहिए कि घट नहीं है लेकिन आप तो सप्त भङ्गीमे घट है और घट नहीं है, इस तरहका प्रयोग करते हैं। अभाव बोधक वाक्यमे अभावका प्रतियोगी ही प्रधान रहता है याने अभावका प्रतियोगी वह पदार्थ जिसका कि अभाव कहा जा रहा और जो अपनेमे स्वयं सद्भावरूप है तो जब-जब भी अभाव बोधक वाक्य बोला जायगा तो इसमे अभावका प्रतियोगी ही प्रधान रहता है। जैसे यह प्रयोग किया कि घटका प्रध्वसाभाव कपाल है। कपाल कहते हैं खपरियोको। जब घट नष्ट हो जाता है तो खपरियाँ बनती हैं। तो घट प्रध्वसाभाव खपरिया हैं इसमे प्रयोग होता है घट नष्ट हुआ। कोई यो प्रयोग नहीं करता कि कपाल नष्ट हुए। घटका प्रध्वंसाभाव कपाल है, तो जिसका अभाव है उसकी ही प्रधानतासे कथन होता है। याने घट नष्ट हुआ यह प्रयोग होता है। तो इसी प्रकार घटमे पटका अभाव है। तो जिसका अभाव है उसका ही नाम लेकर प्रयोग करना चाहिए कि पट नहीं है। तो घटका चाहे भाव अभाव उभय स्वरूप सिद्ध कर लिया जाय लेकिन प्रयोग इसी तरहका कहना चाहिए कि घट है और पट नहीं है। तब सप्तभङ्गीमे जो द्वितीय भङ्गका प्रयोग है वह अयुक्त है।

पूर्व पूर्वप्रयोगानुसार घटमे पररूपसे नास्तित्वका 'पररूपसे घट नहीं है" इस प्रयोगके औचित्यका समाधान—

अब उक्त शङ्काके समाधानमे कह रहे हैं कि शङ्काकार द्वारा इतना तो मान लिया गया है कि घट भाव, अभाव व उभय स्वरूप है। विवाद केवल इस बातमे रह गया कि घट है और घट नहीं है इस प्रकारके भङ्ग बनाकर घट है पट नहीं है इसरूप से भङ्ग बनाना चाहिए था। तो इस सम्बन्धमें मूल बातपर आइये। जब यह मान लिया कि घट भाव, अभाव और और उभय स्वरूप हैं, तो बस इतनी सी बात सिद्ध हो जानेपर सब लोगोका सब विवाद समाप्त हो ही गया, क्योंकि सिद्ध करनेकी बातें यही वस्तुस्वरूपमें थी कि प्रत्येक द्रव्य भाव, अभाव और उभयात्मक है- अर्थात् अपने स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है और दोनो प्रकार भाव और अभाव स्वरूप है अब रह गई

शब्द प्रयोगकी बात घट है स्याद घट नहीं है इस तरहसे प्रयोग क्यों किया गया ? सो देखिये ! शब्दका प्रयोग पूर्व-पूर्व प्रयोगके अनुसार होगा। जिस सम्बन्धमें पहिलेके विवेकी पुरुष जिस प्रयोगको करते आये हैं उस प्रयोगसे ही वाक्य रचना करते हैं, क्यों-कि शब्दका प्रयोग पदार्थकी सत्ताके आधीन नहीं है, किन्तु प्रयोग करने वाले पुराण पुरुषोंके अनुसार होते हैं।

उदाहरणपूर्वक पटमे पररूप नास्तित्वके द्वितीय भङ्गके रूपमे प्रयोग करनेके औचित्यका समर्थन—

जैसे दृष्टान्तमे लीजिए ! एक वाक्य बोला गया देवदत्त पचति अर्थात् देवदत्त खाना पकाता है तो यहाँपर प्रश्न किया जाय कि देवदत्त शब्दके मायने क्या है? देवदत्त खाना पकाता है प्रयोग तो यह किया मगर देवदत्त शब्दका अर्थ क्या है? क्या देवदत्तके मायने है देवदत्तका शरीर। यदि देवदत्तके मायने है देवदत्तका शरीर तो यो प्रयोग करना चाहिए कि देवदत्तका शरीर खाना पकाता है। लेकिन ऐसा प्रयोग कोई नहीं करता है। अच्छा बतलावो—देवदत्त शब्दका अर्थ क्या यह है कि देवदत्तका आत्मा ? याने वहाँ रहने वाला आत्मा। यदि यह अर्थ है तब तो देवदत्तका आत्मा रसोई बनाता है ऐसा प्रयोग करना चाहिए। पर ऐसा कौन प्रयोग करता है ? तब तो तीसरी बात यह निश्चय किया कि देवदत्तका अर्थ है शरीर सहित देवदत्तका आत्मा। तब यो प्रयोग करना चाहिए कि शरीर सहित देवदत्तका आत्मा खाना पकाता है। पर यो भी कोई नही बोलता। बोला यो ही जाता है कि देवदत्त खाना पकाता है। तो इस उदाहरणसे आपने समझ लिया ना कि प्रयोग जो होते हैं वे पूर्व पूर्व प्रयोगके अनुसार होते हैं। और, जैसा प्रयोग करते चले आ रहे हैं उस प्रयोगके अनुसार प्रयोग होता है। और उस प्रयोगमें उसका सब भाव समझा जाता है। देवदत्त पचति इतना कहनेसे वहाँ सब भाव आ जाता है। अब उसमें शब्दकी जरा जरा सी बारीकी देखें वाच्यकी और उसमें प्रयोग बदलें, फिर तो किसी भी प्रकार ठीक न बैठ सकेगा तो समझना यह चाहिए कि वास्तविकता क्या है ? वस्तुका स्वरूप क्या है ? बस उसे समझनेके लिए ही शब्द प्रयोग है न कि शब्द बोलते जानेके लिए शब्द हैं। तब इस प्रकरणमें भी प्रयोग यह किया गया है कि जो पूर्व-पूर्व सत पुरुषोकी धारासे चला आया है। अर्थ उसका क्या है सो शङ्काकारने मान ही लिया है। मानना ही पड़ेगा। जो वस्तुमे स्वरूप है उसकी बात तो सबको माननी ही पड़ेगी। प्रयोगकी बात रह गयी थी। उसका जैसे देवदत्त पचति इसमें ३ विकल्प करके ३ प्रकारके शब्द प्रयोगका प्रसग होना चाहिए, मगर क्यो नहीं किया गया इन प्रकारका प्रयोग? तो उसका उत्तर है कि पूर्व-पूर्व पुरुषोका प्रयोग नहीं है, इस कारण देवदत्त: पचति प्रयोगसे ही उसका अर्थ बताया गया है। बस यही बात यहाँ है। पूर्व-पूर्व प्रकारके

वस्था दोष आयगा क्योकि वह अभाव भी पररूप है। फिर उसका भी अभाव मानियेगा। और, फिर पररूपाभावका अभाव इसका अर्थ क्या है कि पररुपका अभाव नही। दो अभाव कहनेपर विधि वन जाया करती है। तो अब यहाँ यह कह रहे हो कि घटमे पररुपाभाव रुप परका अभाव है। पटमे जो आतान, वितान तवु-आदिक स्वरुप है उनके अभावका अभाव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे सब घटरुप हो गए। अथवा घट पट आदिक रुप हो गए, क्योकि दोका निषेध करनेसे प्रकृत-रुपकी सिद्धि होती है। घटके अभावका अभाव, इसका अर्थ क्या होगा ? याने घट। दो अभाव होनेपर उसकी विधि बन जाया करती है। ऐसे ही घटमे पररूपाभावका अभाव है ऐसा कहनेसे क्या अर्थ हुआ कि वह सब पर घटस्वरूप हो गया। तो घटका पररूपाभाव घटसे भिन्न है यह बात तो नही कह सकते। अब द्वितीय पक्ष मानेंगे याने यह कहेगे कि घटमे पररूपका अभाव घटमे अभिन्न है तो बस ठीक है। यही तो सिद्ध करना था कि घटमें पररूपका अभाव घटसे अभिन्न है और यह घटका धर्म है याने स्वरुपसे अस्तित्वका होना जैसे घटका या वस्तुका धर्म है इसी प्रकार पररुपका नास्तित्व होना, पररुपका अभाव होना यह भी प्रकृत वस्तुका उदाहरणमे घटका धर्म है। यही बात सिद्ध करना योग्य था, सो यह द्वितीय पक्ष माननेपर यह सिद्ध हो ही जाता है। तब यहाँ यह स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि अपनेसे भिन्न अस्तित्वरुप धर्मका जैसे घटमे सत्त्व माना है उसी प्रकार अपनेसे अभिन्न पररुपके असत्त्वको भी घटका धर्म मान लेना चाहिए। यो सप्तभङ्गीमें मूल जो दो भंङ्ग कहे गए हैं, घट में स्वरुपसे अस्तित्व है, घटमे स्वरुपसे नास्तित्व है, यों घट भावाभावस्वरुप है, यह बात मान ही लेनी चाहिये।

भाव अभाव स्वरूप और अभाव भावस्वरूप होनेसे वस्तुके उभयात्मक होने की शङ्का और उसका समाधान—

अब शङ्काकार कहता है कि देखिये ! स्वरूपसे अस्तित्वका होना ही पररूप का अभाव कहलाता है और पररूपसे अभाव होनेका नाम ही स्वरूपका भाव होना कहलाता है। तो भाव और अभाव इन दोनोका एक वस्तुमें भेद न रहा अर्थात् भाव अभाव स्वरूप है, अभाव भावस्वरूप है। तब इन दोनोमे भेद न होनेसे वस्तु उभयात्मक कही गयी। एकात्मक है, भाव स्वरूप है, उसका भी अर्थ है अभाव स्वरूप। अभाव स्वरूप है उनका भी अर्थ है भावस्वरुप। याने घट स्वरुपसे ही है इसका अर्थ यह हो गया कि वह पररुपसे नहीं है। घट पररुपसे नहीं है इसका अर्थ यह हुआ कि घट स्वरुपसे है। वह तो अर्थकी बात है। वहाँ दो बातें कहाँ पडी हैं ? तब घटको उभयात्मक नही कह सकते। किसी भी वस्तुको आप उभयात्मक न बता सकेंगे। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि भाई घटमें भाव और अभाव दोनोकी जो बात कही गई

है सो जिस जिस अपेक्षासे है उस उस निमित्तका भेद होनेसे भाव और अभाव दोनों भङ्ग कहे जायेंगे। यद्यपि शङ्काकारका यह कथन एक दृष्टिमें सही है कि स्वरूपसे भाव होनेका नाम ही पररूपसे अभाव है, लेकिन स्वरूपसे भाव होना इस भावमें अपेक्षा की गई है स्वरूपकी, पररूपकी। तो अपेक्षणीय जो निमित्त है उसका भेद होनेसे भाव और अभावका भेद कहा जाता है, क्योंकि स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप निमित्त की अपेक्षा करके तो भावका ज्ञान होता है और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा करके अभावका ज्ञान होता है।

एकत्व द्वित्व सख्याके उदाहरण पूर्वक स्वरूपाभाव और पररूपाभावमे भेद एव अभेदकी सिद्धि—

ॐ

जैसे एकत्व द्वित्वादिक सख्यामे अपेक्षाके भेदसे भेद है इसी प्रकार एक वस्तुमे निमित्तकी अपेक्षासे भाव और अभावमें भेद है। देखिये ! द्वित्व सख्या और एकत्व सख्या इन दोनोंकी अपेक्षासे भेद यह है कि अन्य द्रव्यकी अपेक्षा करके तो द्वित्व, त्रित्व आदिक अनेक सख्यायें उत्पन्न होती हैं और केवल एक अपने आपकी ही अपेक्षा रख करके एकत्व सख्या बनती है याने यह वस्तु एक है ऐसा उसे एक बतानेमे किसी परद्रव्यकी अपेक्षा नहीं करनी पडी, किन्तु एक ही उस स्व द्रव्यको ध्यानमे रखकर बता दिया गया कि वह एक है, लेकिन जहाँ दो तीन आदिक कहने पडते हैं। जैसे ये केला दो हैं तो यहा अन्य द्रव्य अन्य केलेकी अपेक्षा रखकर दो सख्या बनी। तो देखिये ! सख्याओमे तो परस्पर भेद हो गया अपेक्षाके भेदसे, मगर सख्या जिसकी की जा रही है उस वस्तुसे सख्यामे भेद तो नहीं है कि केला तो अलग पडे हों और २, ३ आदिक सख्यायें अलग पडी होती हो। यो सख्या सख्येय पदार्थसे भिन्न नहीं है। तो जैसे एक द्रव्यमे द्रव्यान्तरकी अपेक्षा करके तो द्वित्व आदिक संख्या प्रकट होती है और स्वकीय निज स्वरूपकी अपेक्षा रखकर मात्र अन्यकी अपेक्षा किए बिना एकत्व सख्या प्रकट होती है मगर वह द्वित्व सख्या एकत्व सख्यासे अनन्य नहीं है, भिन्न नहीं है, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता अर्थात् स्पष्ट समझमें आ रहा कि एकके मायने अलग है और २, ३ के मायने अलग हैं। इतनेपर भी यह तो देखिये कि वे २, ३ आदिक सख्यायें सख्यावान पदार्थ यदि सर्वथा भिन्न हो जाय तो द्रव्य सख्येय न कहलायेगा फिर उसकी गिनती ही क्या रही ? गिनती भी जुदी हो गई और जिन पदार्थोंकी गिनती की जा रही वे पदार्थ भी जुदे हो गए। अब गिनती भी न बन सकेगी। तो जैसा गिनतीका द्रव्य भिन्न है फिर भी गिनतीका आश्रयभूत जो पदार्थ है वह भिन्न नहीं है। उस ही पदार्थमे गिनती है। ऐसे ही समझना चाहिये कि भाव और अभाव इन दोनोंकी अपेक्षाके भेदसे भेद है फिर भी भाव और अभाव एक वस्तुमे अभिन्नरूपसे रह रहे हैं। वस्तु जुदी हो भाव अभाव जुदे हो ऐसा नहीं है।

सख्या सख्यावानमे सर्वथा अभेद व भेदकी असिद्धिकी त-ह स्वरूप भाव व पररूपाभावमे सर्वथा अभेद व भेदकी असिद्धि—

यहाँ शकाकार कहता है कि जो दृष्टान्त दिया गया है अभी कि जैसे सख्या परस्परमे भिन्न है। क्योकि उनका अपेक्षणीय भेद है, द्रव्य सख्या द्रव्यान्तरकी अपेक्षा से होती है। एकत्व सख्या निज स्वरुपसे होती है और तिसपर भी, सख्या, सख्यावान पदार्थसे भिन्न नही है। सख्या सख्यावानमे ही तादात्म्य रुपसे है सो यह बात युक्त नही बैठती कि सख्या सख्यावानसे अभिन्न है। संख्या गुण है वह प्रथक् पदार्थ है और द्रव्य द्रव्य ही है सख्याका द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध होनेने द्रव्य सख्येय बनता है। यह दोष देना कि सख्या यदि सख्यावानसे भिन्न हो जाय तो सख्या अलग हो गयी, सख्यावान पदार्थ अलग हो गया तब तो सशय भी न रहा, उस पदार्थकी सख्या न बन सकेगी। यह बात कहना यो अयुक्त है कि सख्याका जब द्रव्यमे समवाय सम्बन्ध होता है तब द्रव्य सखेय हो जाया करता है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि समवाय कथचित् तादात्म्यमे भिन्न कुछ चीज नही कहलाती। जिसको समवाय सम्बन्ध कहते हैं। शकाकार कहता है कि वह सामर्थ्य भी क्या चीज है। दो द्रव्योके सयोग सम्बन्धकी तरह नहीं है। समवाय है कथंचित् तादात्म्यरुप। जैसे पदार्थमे रुप का समवाय है तो पुद्गलमे रुप तादात्म्यरुपसे रह रहा है, यही उसका भाव है। रुप गुण अलग हैं, पदार्थ अलग है, फिर रुप गुणका समवाय होता हो तब पदार्थ रुपी है ऐसी बात नही है। तो समवाय सम्बन्ध कथंचित् तादात्म्य रुप ही होता है इसलिए कथचित् तादात्म्यरुप ही होता है इसलिए कथचित् तादात्म्यसे अभिन्न कोई समवाय सिद्ध हो सो नही है। तो यों साख्याका सखेयमे कथचित् तादात्म्य है। तो जैसे साख्या अपेक्षाके निमित्तभूत वस्तुके भेदसे परस्पर भेद है फिर भी सखेय पदार्थसे अभिन्न है इसी प्रकार भाव और अभावकी अपेक्षाके निमित्तके भेदसे भाव और अभावमे भेद है और फिर भी एक पदार्थमे वे भाव और अभाव दोनो रह रहे हैं। भाव और अभाव का यद्यपि स्वरुप भिन्न भिन्न है तिसपर भी दोनोका एक पदार्थमें विरोध नही है, क्योकि अपेक्षणीय निमित्तके भेदसे भाव और अभाव यहाँ सिद्ध हो रहा है।

एक वस्तुमे सत्त्व व असत्त्वकी प्रतीतिका कथन—

❀

शङ्काकार कहता है कि एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्वकी प्रतीति मिथ्या है, क्योकि सत्त्व और असत्त्व ये दोनो कहां विदित होते है ? जब भी पदार्थ दिखते हैं तो या तो यह देखनेमे आता है कि इसमे सत्त्व है या जब कभी यह दिखनेमें आता कि इसमें असत्त्व है, सत्त्व और असत्त्व दोनोंके दोनो एक वस्तुमे नहीं रहते। भिन्न भिन्न

विरोध बनेगा, मगर यह असंयुक्त है तो इसमे विरोध क्या ? एक दूसरेका वध कैसे कर देगा ? तो बाध्यबाधक विरोध बनता ही तब है जब कि ये एक समय संयुक्त हो जायें। यदि संयोगके बिना ही बाधक अपने वध्यका विनाश करदे तब तो सभी जगह साँपका, नेवलेका, अग्निका सबका अभाव हो जायगा क्योंकि अब तो मान रहे हो यह कि संयोग न होनेपर भी इसमे बाध्य बाधक भाव है। लेकिन ऐसा तो नहीं। उनका संयोग होता है तो उत्तरकालमें जो बलवान है वह निर्बलका वध कर देता है। सो बाध्य घातक विरोधकी पद्धति देख लीजिये ! उसमें यह सिद्ध होता है कि एक साधनमे एक ही समयमे दोनों उपस्थित हुए हैं। लेकिन आप तो अस्तित्व और नास्तित्वको एक पदार्थमें एक समयमे स्थित ही नही करते। और इस विरोधमे तो यह सिद्ध होता कि यह विरोध उनमे है जो संयोगी हो।

एक वस्तुमें सत्त्व और असत्त्वके सहानवस्थारूप विरोधका अभाव—

❀

अब यदि कहोगे कि सहानवस्थारूप विरोध है याने सत्त्व और असत्त्व एक साथ अवस्थित नही रह सकते तो यह विरोध भी सत्त्व और असत्त्वमे सिद्ध नही कर सकते, क्योंकि वे एक वस्तुमे कालभेदसे दोनो विद्यमान होनेपर होते हैं याने सहानवस्था विरोध होता है किस परिस्थितिमे कि वे दोनो एक वस्तुमे रहते हैं मगर पहिले कुछ रहा, पीछे कुछ रहा, वहाँ भी तो सहानवस्था विरोध है। जैसे आमके फलमें हरापन और पीलापनका विरोध। जब कच्चा है तब हरा है, जब पक गया तो पीला हो गया। तो एक ही आममें रह तो गये दोनो ही, हरापन भी और पीलापन भी, पर कालभेदके रहा। पहिले हरापन था, पीछे पीलापन होगया। तो वहाँ हम कहते हैं कि पीलापन उत्पन्न होकर इस पीलेपनने हरेपनको नष्ट कर दिया। तो इस तरह सहानवस्थारूप विरोध वहाँ ही हुआ जहा एक पदार्थमे दोनोका रहना सम्भव है। रहे वे पहिले और पीछे लेकिन एक पदार्थमें रहनेकी बात तो सिद्ध होती है, इसमे इतना तो कबूल कर लिया गया कि अस्तित्व और नास्तित्व दोनो एक पदार्थमें रह सकते हैं, लेकिन काल भेदसे रहे तो क्या आपत्ति आती है सो सुनो ! यदि अस्तित्व पहिले रहता है तो अस्तित्वके समयमे नास्तित्व तो न रहा। जैसे घटमे अस्तित्व माना। अब पररूपका अस्तित्व है नहीं। सहानवस्था विरोधके पक्षमे, तो इसका अर्थ यह हो गया कि सारा विश्व घटात्मक हो गया। जीवके अस्तित्वके कालमे जीवका नास्तित्व नही मानते। तो इसके मायने है कि सर्व पदार्थ जीव सत्त्वमात्र ही रह गए, ऐसे ही मानो नास्तित्वके समयमें अस्तित्व न रहा। जिस समय पररूपसे नास्तित्वकी बात कही जा रही थी एक एकान्त मान लिया कि यहाँ तो सर्वथा नास्तित्व है। अस्तित्व की गुंजाइस नहीं, तब फिर वह चीज रही ही नही। नास्तित्व ही रहा। एक नास्तित्वरूप रहा तब फिर घटका जो अर्थ कार्य हुआ था पानी रखना आदिक वह

कहाँसे किया जाय ? फिर तो सब व्यवहार ही खतम हो जायगा। अथवा जीवके उदाहरणमे नास्तित्व ही मानते, अस्तित्व न मानते। यदि यह बात जरा भी अगीकार नही करते तो इसके मायने हुआ कि जब जीव ही नही है तो बन्ध मोक्ष आदिक सब व्यवहार खतम हो जायेंगे। और, सर्वथा असत् जो अभाव याने नाश अयुक्त न रहा तब अस्तित्व और नास्तित्व इनका एक साथ सहानवस्थारूप विरोध करना युक्त नही है। जीवका अस्तित्व ही तब है जब कि उस ही समय उसमे पररूपका नास्तित्व तब ही तो सम्भव है जब कि जीवका अपने स्वरूपसे अस्तित्व हो। यो एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्व दोनोका सहानवस्थारूप विरोध भी सम्भव नही हो सकता।

एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्वके रहनेमे प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भावरूप विरोध का अभाव—

ॐ

अस्तित्व और नास्तित्वका प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भाव विरोध भी नही बनता क्योकि प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भावरूप विरोध किस स्थितिमे बनता है सो सुनो! जैसे अग्निका काम दाह करना है, किन्तु एक मणि इस प्रकारकी होती है कि जिसे अग्नि के समीप यदि रख दिया जाय तो अग्निमे दाह नही बन पाता, क्योकि मणि और अग्निमे प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भाव बना हुआ है। बहुतसे वनस्पति रस अथवा औषधि ऐसे होते हैं कि यदि पत्तेपर चिपका दिए जायें तो उस पत्तेको अग्नि जला नही सकती जैसे नौसादर चूना जैसी औषधिको पानीमे पीसकर पत्तेपर लगा दिया जाय तो उस पत्तेकी बनी तोनियापर दाल भी पकाई जा सकती है। ऐसा प्रतिबध्य प्रतिबाधक भाव होता है। तो रहे यो वे दोनो एक साथ ना, और प्रतिबध्य प्रतिबन्धककी बात कहाँ रही ? सो मणि और दाहके समान अस्तित्व और नास्तित्वमे प्रतिबन्ध नही है कि अस्तित्वके समयमे नास्तित्वका प्रतिबन्ध हो या नास्तित्वके समयमे अस्तित्वका प्रतिबंध हो ? एक खतम हो जाय, एक रुक जाय अपना काम करनेसे, ऐसा नही है, क्योकि अस्तित्वके समय अगर नास्तित्व अपना काम करनेसे रुक जाय अर्थात् पररूपसे नास्तित्वकी बात न रहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि विवक्षित पदार्थमय ही सारा जहान बन गया। अथवा पररूपके नास्तित्वके कालमे स्वरूपास्तित्व काम न कर सके तो स्वरूप ही न रहा, पदार्थ ही न रहा, लेकिन दोनोका बराबर रहना और दोनोका काम होना यह अनुभवसिद्ध बात है। तब यो एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्व दोनोका एक साथ न रहनेकी बात सिद्ध नही होती।

एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्वके विरोधमे शकाकार द्वारा दिये गये उदाहरणो के विरोधकी सिद्धिका अभाव—

ॐ

विरोध बतानेमे जो शीत और उष्ण स्पर्शका दृष्टान्त दिया है वह भी ठीक नही है। देखो कोई धूपदानी होती है, उसमे अवच्छेदकके भेदसे शीत और उष्ण दोनो स्पर्शकी उपलब्धि होती है। किसी जगह वह धूपदानी ठण्डी है किसी जगह गर्म। अथवा किसी घडेमे जैसे धूप जलाई जा रही है तो उस घडेमे शीत और उष्ण स्पर्श दोनोकी उपलब्धि पायी जा रही है। अथवा जैसे एक वृक्षमे चलपना और अचलपना ये दोनो पाये जाते हैं। पत्ते और टहनियाँ तो चलती रहती हैं तथा तना अचल रहता है। अथवा जैसे एक घडेमे लालरूप, श्यामरूप दोनोकी उपलब्धि है, विरोध नहीं है। या एक ही शरीरमे ढका हुआ रूप और बिना ढका हुआ स्वरूप दोनोकी उपलब्धि सम्भव है कोई विरोध नही है। इसी प्रकार एक पदार्थमे सत्त्व और असत्त्व दोनोंकी स्थिति रह जानेमे किसी भी प्रकारका विरोध नही है।

एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्वके रहनेमे वैयधिकरण्य दोषका अभाव—

❀

अब शकाकार कहता है कि एक ही पदार्थमे सत्त्व और असत्त्व दोनोको माना जाना वैयाधिकरण दोषसे युक्त है अतएव यह सप्तभङ्गी युक्त नही हो सकती। वैयधिकरण कहते हैं उसे कि अनेक धर्मोंका भिन्न-भिन्न अधिकरणमे रहना और फिर उन्हे किसी एक ही अधिकरणमे बताना। जैसे यहाँ अस्तित्वका आधार है अन्य और अस्तित्वका आधार अधिकरण है, तो ऐसे भिन्न-भिन्न अधिकरण वाला अस्तित्व और नास्तित्वसे एक वस्तुमे सद्भाव बताना यह वैयधिकरण दोष है इसके समाधानमे कहते हैं कि एक ही पदार्थमें अस्तित्व नास्तित्व बतानेमे वैयधिकरण दोष नही आता। क्योंकि यह तो हर एकके प्रति सिद्ध है कि सत्त्व और असत्त्वका यहाँ एक अधिकरण है। घट है और घट पररूपसे नही है तो यहाँ अस्तित्वका अधिकरण भी घट है और नास्तित्वका अधिकरण भी घट है। याने अस्तित्व किसमे बताया गया? घटमें, और नास्तित्व, किसमे बताया गया? घटमे। तो इन दोनों धर्मोंका अधिकरण एक है यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है। इसी कारण इसमें वैयधिकरण नामका दोष नहीं होता।

एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्वके माननेमे अनवस्था दोषका अभाव—

❀

अब शङ्काकार कहता है कि एक पदार्थमे स्वरूपसे सत्त्व, पररूपसे नास्तित्व की बात कहनेसे अनवस्था दोष आयगा जिस रूपमे अस्तित्व है और जिस रूपसे नास्तित्व है उन रूपोमे भी प्रत्येकमे अस्तित्व और नास्तित्वपना बताना चाहिए। क्योंकि स्याद्वाद शासनकी यह टेक है कि हर जगह स्याद्वाद होना चाहिए। जैसे घट का बताना कि स्वरूपसे अस्तित्व है, तो इस बातको स्याद्वादसे सिद्ध करना होगा। स्वरूपसे अस्तित्व है उसमे भी अस्तित्व और नास्तित्व बताना होगा और अस्तित्व

नास्तित्व बतायेगे किसी स्वरूप पररूपकी अपेक्षासे, फिर उनमे भी प्रत्येकमे जो स्वरूपमे अस्तित्व कहा अथवा पररूपसे नास्तित्व कहा उस प्रत्येकमे भी अस्तित्व नास्तित्वपना बताना होगा। यो उसके लिए फिर तृतीय स्वरूप पररूप लगेगा। वहा भी अस्तित्व नास्तित्वपना कहना होगा। यो स्वरूप पररूप अस्तित्व नास्तित्व इनकी परम्परा बतानी होगी और इसका कभी विश्राम नही हो सकता। तब यह अनवस्था दोष हुआ ना ? अनवस्था कहते हैं उसे कि जहाँ अप्रमाणिक पदार्थोंकी परम्परा कल्पित की जानेसे विश्राम ही न आये। तो एक वस्तुमे जिस रूपसे अस्तित्व कहा, उसको सिद्ध करनेके लिए फिर अस्तित्व नास्तित्व बताना होगा। फिर उसमे भी प्रत्येकमे अस्तित्व नास्तित्वपना बताना होगा। यो अनवस्था दोष हो जायगा। अब इस शङ्काके समाधानमे कहते है कि यहाँ जो अनवस्था दूषण बताया है एक पदार्थमे जिस रूपमे सत्व हैं अथवा जिस रूपसे असत्व है उनको सिद्ध करनेके लिए अन्य अस्तित्व नास्तित्वकी कल्पना बताकर जो अनवस्था दोष बताया गया है वह अनेकान्तवादमे नही लगा सकता। क्योकि अनन्त धर्मात्मक वस्तु स्वय प्रमाणसे स्वीकार की हुई है। अनवस्था तो वहाँ आयगी जहाँ अप्रामाणिक पदार्थोमे परस्पर कल्पित किया जायगा। पर यहाँ अप्रमाणिकता तो रच भी नही है। स्पष्ट तौरसे देख लो कि प्रत्येक वस्तु सत्व और असत्व स्वरूप है। तो जो प्रमाणसिद्ध बात है उसमे अन्य अप्रमाणिक तत्वोकी कल्पना करना युक्त नही है।

एक वस्तुमे सत्व और असत्त्वके रहनेमे संकर दोषका अभाव—

❀

अब शङ्काकार कहता है कि एक वस्तुमे सत्व और असत्वकी कल्पना करनेमे सकर दोष आ जायगा। सकर कहते हैं उस दोषको जहाँ सब धर्मोंकी एक साथ प्राप्ति हो जाय। जहाँ सब अपेक्षाओकी एक साथ उपलब्धि हो। जिस रूपसे यहाँ सत्व कहा जा रहा है। तो जब सत्व असत्व एक ही वस्तुमे तादात्म्य हैं उनमे आधार भेद नही तब जिस रूपसे सत्व कहा जा रहा उस रूपसे असत्व भी बन बैठेगा। जिस रूपसे असत्व कहा गया है उस रूपसे सत्वका भी प्रसंग हो जायगा। क्योकि जब एक ही पदार्थमे दोनो रह रहे हैं और एक साथ मिलकर रह रहे हैं तो उनमे स्वरूपका नियम नही बनाया जा सकता कि अस्तित्व तो इसी रूपसे है और नास्तित्व इसी रूपसे है। तो यो सबकी एक साथ प्राप्ति होनेसे सकर दोष होगा। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि अनेकान्तवादमे सकर दोषकी भी कल्पना नही हो सकती, क्योंकि इन दोनो धर्मोंकी स्वरूप अपेक्षा स्पष्ट भिन्न रूपसे प्रतीत हो रही है। अर्थात् घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है और परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे हो ही नही सकता। अस्तित्व परके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावमे हो ही नहीं सकता। तो जो प्रतीतिसिद्ध है, प्रमाणसिद्ध है उसमे रूप बदलना और उन सबकी जिस

किसी भी धर्ममें योजना बनी ऐसे संकर दोष वाली बातें सम्भव नहीं हो सकतीं।

एक वस्तुमे सत्त्व व असत्त्वके रहनेमे व्यतिकर दोषका अभाव—

❀

अब शङ्काकार कहता है कि एक वस्तुमे सत्व और असत्वकी कल्पना करनेमे तो व्यतिकर दोष हो जायगा। व्यतिकर दोष कहते हैं परस्पर विषयोंमे गमन करनेको। जिस रूपसे सत्व कह रहे हो उस रूपमे असत्व ही रह जाय, सत्व न रहे ऐसा भी तो हो सकेगा। जब एक वस्तुमे सत्व और असत्व समान रूपमे बिना परदेके साहित्यिक ढगसे मान रहे हो तो वहाँ यह भी तो हो सकता है कि जिस रूपसे सत्व हो हो न। अथवा जिस रूपसे असत्व ही कह रहे हो उस रूपमे सत्व ही रहे, असत्व न हो, यों परस्परके विषयोंपर एक दूसरेका अधिकार न बनेगा। एक दूसरेके विषयमें पहुंचेगा। यही तो व्यतिकर दोष है। इस शकाके समाधानमें कहते हैं कि व्यतिकर दोषकी कल्पना करना अविवेक है। जो बात अनुभवसिद्ध है प्रतीतिसिद्ध है सब लोगोंको स्पष्ट समझमे आ रहा है, वहाँ विषय बदलना और व्यतिकर दोष बताना यह कैसे सम्भव है? सब ही लोग प्रत्यक्षत जान रहे हैं कि घटका घटत्व घटके रूपसे ही है। कही घटके रूपसे असत्व न बन जायगा। घटमे नास्तित्व पररूपका ही है। कहीं पर-रूपसे अस्तित्व न बन जायगा। यह तो साफ बात है। कोई पदार्थ है तो उसमें ये दो बातें न्यायप्राप्त और स्वयसिद्ध है कि अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है। तो यों प्रतीतिसिद्ध वस्तुमे व्यतिकर दोषकी कल्पना नहीं की जा सकती।

एक वस्तुमे सत्त्व व असत्त्वके रहनेके विषयमे सशय, अप्रतिप्रत्ति व अभाव दोषका अभाव—

❀

अब शङ्काकार कहता है कि वस्तुको जब सत्त्वासत्त्वात्मक मान लिया सद्रूप है, असद्रूप है, ये दोनो बातें जब कह रहे हो तो वस्तुमे फिर यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि वस्तु सद्रूप ही है अथवा वस्तु असत्वमय है वस्तुमे यह ही स्वरूप है, ऐसा ही है, ऐसा निश्चय नही बन सकता। और, जहाँ निश्चय नही रहता है और अनेक धर्मोंका आश्रय किया जाता है वहाँ सशयदोष हो जाता है। जैसे किसी पदार्थमे दो धर्म कल्पित किए जा रहे हो कि यह सीप है या चाँदी? तो वहाँ निश्चय तो न हो सका कि यह सीप ही है अथवा यह चाँदी ही है। तो वहाँ सशय दोष हो गया, और सशय दोष होनेसे वहाँ कोई निश्चयरूपका ज्ञान न बना। तो यो अप्रतिपत्ति दोष हो गया। और जब अप्रतिपत्ति है उसके सम्बन्धमे कुछ निर्णय ही नहीं, जानकारी ही नहीं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्त्वात्मक वस्तुका अभाव है। तो यो सत्त्व और असत्त्वका एक वस्तुमे कल्पना करना सशय अप्रतिपत्ति और अभाव दोषसे युक्त है।

अब उक्त शङ्काके समाधानमे कहते हैं कि वस्तुके सत्व असत्व स्वरूपमे सशय अप्रतिपत्ति और अभावकी कल्पना करना भी युक्त नही है। इस सम्बन्धमे पहिले भी बहुत विस्तारसे बताया गया था कि यहाँ सत्त्व और असत्त्वका सशय नही है, पूर्णरूपसे निश्चय है कि वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है ही है। वह वस्तु परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही ही है। वहाँ सशयको स्थान नही है। पूर्णरूपसे निश्चय है और इसी कारण इन भङ्गोमे एव शब्द दिया गया है। इस कारण न उसमे सशयका अवकाश है और न अप्रतिप्रत्तिका अवकाश है। स्पष्ट ज्ञान हो रहा है कि पदार्थ है तो है ही है अपने रूपसे, और यह है पना तब बन रहा है जब पररूपमे नही है। तो यो सत्व और असत्व दोनोका निश्चय हो रहा है तब अप्रतिपत्ति नही है, और अप्रतिपत्ति न रहनेसे स्पष्ट सद्भाव सिद्ध होता है। वहाँ अभाव दोषका अवकाश नही है। यो वस्तुको सदसदात्मक माननेमे विरोध आदिक आठों ही दोष सम्भव नही हैं।

हेतुवादमे साधकत्व व दूषकत्वकी स्थितिकी भाति एक वस्तुमे सत्त्व असत्त्व की सिद्धि—

अब वस्तुको सत्व असत्वमय सिद्ध करनेके बाद और इसमे शास्त्र और युक्तियोसे सत्व बतानेके बाद इसमे विरोधादिक कोई भी दोष नही हैं, ऐसा स्पष्ट बतानेके बाद अब कुछ उन दार्शनिकोको जो कि मिथ्यादर्शनके आग्रहसे तत्त्वका ग्रहण नही कर रहे हैं उनको स्वं लोक सिद्ध हेतुवादका आश्रय करके समझाते हैं तो यह बताते हैं, कि देखो, हेतुवादने भी स्वपक्ष और परपक्षकी अपेक्षामे साधकता व बाधकताकी बात आती है। जिसको अपने अभीष्ट साध्यकी सिद्धि करना है उसे हेतुका प्रयोग अवश्य करना पडता है। अनुमानमे जिस साध्यको सिद्ध करना है उस साध्यकी सिद्धिके लिए हेतु अवश्य बोलना पडेगा। तो जो भी हेतु बोला जायगा वह भी हेतु अपनेपक्षका साधक हो और परपक्षका बाधक हो, यह बात तो होनी ही पडेगी। अब जब स्वपक्ष साधकता और परपक्ष दूषण ये दोनों बातें हेतुमे आ गयी तो अब देखिये। हेतु इन दो धर्मोरूप हो गया ना? जैसे कि प्रकृतमे वस्तुको सत्व असत्वमय बताया जा रहा है तो उसके उदाहरणमे यही देख लीजिए ना कि हेतु स्वपक्ष साधकता और विपक्ष दूषणता इन दोनो धर्मोसे युक्त है तो हेतु कहना जरूरी है, क्योकि केवल प्रतिज्ञासे साध्यकी सिद्धि नही होती। कह दिया इतनेसे क्या? इस पर्वतमें अग्नि है, इतना कहने मात्रसे अग्नि सिद्ध न होगी। उसका हेतु देना पडेगा कि धूम होनेसे। अब जो भी हेतु दिया गया उस हेतुमे यह कला होगी ही कि वह हेतु अपने पक्षको सिद्ध न करे विपक्षकी व्यावृत्ति करें तो ये दो धर्म हेतुके अवश्य होते हैं। अब इसमें यह देख लीजिए कि जिस स्वरूपसे हेतुमें साधकपना है उस रूपसे हेतुमें दूषकपना नहीं है। और, जिस रूपसे हेतुमें दूषकपना है उस रूपसे हेतुमें साधकपना नहीं है। यो तो

साधकता और दूषकता येदोनो अत्यन्त भिन्न हैं लेकिन हैं तो वे दोनो हेतुके धर्म। सो हेतुकी अपेक्षासे वे कथंचित अभिन्न हैं। अब इसमे इस दोपकी कल्पना करना निराधार है कि कोई कहे कि जब हेतुकी अपेक्षा साधकत्व और दूषकत्व ये दोनो धर्म अभिन्न हैं तो जिस रूपसे दूषकता हो जाय यो सकर बन जाय या जिस रूपसे साधकता है उस रूपसे दूषकता ही रहे। यो व्यतिकर हो जाय अथवा विरोध आदिक हो, साधकता और दूषकतामें विरोध हो। इनका भिन्न अधिकरण माना जाय, यह दोप सम्भव तो नही है। सभी दार्शनिक इस बातको स्पष्ट समझ रहे हैं। तो जैसे इस हेतुवादमें विरोध आदिक ८ दोप नही आ रहे हैं तो ऐसे ही अनेकान्त क्रियामें सत्व और असत्वकी भी एक वस्तुमें वृत्ति हो सकती है। वहा भी ये विरोध आदिक ८ दोष सम्भव नही है। अत वस्तु सदसदात्मक है और उनकी अपेक्षा देकर यहाँ ७ भङ्ग बताना प्रमाणसिद्ध है।

साख्य सिद्धान्तमे भी अनेकान्त प्रक्रियाके आश्रयका प्रयत्न—

ॐ

यह बात पूर्णतया तथ्यभूत है कि अनेकान्त प्रक्रियामे सभी वादियोकी सम्मति है, क्योकि किसी न किसी रूपमे एकानेक स्वरूप वस्तु सबने ही माना है। जैसे कि साख्य सिद्धान्तमे कहा है कि सत्व रजो और तमोगुणकी साम्य अवस्थाको प्रधान कहते हैं। तो इस लक्षणमे प्रधानकी एकानेकात्मकता स्पष्ट विदित हो जाती है। उनके मतमे एक प्रधान ऐसा स्वीकार किया गया है जो प्रसन्नता, लघुता, शोप, सताप कारुण्य आदिक भिन्न-भिन्न स्वभाव रखते हैं, ऐसे पदार्थोंका एक प्रधान स्वरूप स्वीकार किया है, तब यही तो स्पष्ट हुआ कि यह प्रधान एकानेक स्वरूप है। तो अनेकान्तवादमें भी यही बात कही जाती है। वस्तु सत्व असत्वमय है, एकानेकस्वरूप है, नित्यानित्यस्वरूप है। तो इस प्रकारकी अनेकान्त पद्धति सबने ही अपनाई। यहा शकाकार कहता है कि प्रधान तो कोई एक वस्तु ही नही है, किन्तु साम्य अवस्थाको प्राप्त सत्व रजो तमो गुण ही प्रधान कहलाते हैं, क्योंकि सत्व रजो और तमो गुणके समूहमे ही प्रधान पदकी शक्ति मानी गई है। इस कारण यहा एकानेकस्वरूप सिद्ध नही किया जा सकता है। उत्तरमें कहते हैं कि यद्यपि तीनो गुणोका समूह ही प्रधान है तो भी यह बात तो अनेकान्तवादकी पद्धतिपर प्रकाश डाला जा रहा है। किसी भी रूपमे मान लो। तीन गुणोका समूह प्रधान है। ठीक है, पर जाहिर तो यह होगा ना, कि यह प्रधान एक है और त्रिगुणात्मक है। तो एकानेकात्मकपना तो आ ही गया। समुदाय और समुदायीमे भेदभाव नही है। तीन गुणोका समूह प्रधान हैं तो उस प्रधानमें और उन तीन गुणोंमे क्या भेद हैं? उनका ही समूह तो प्रधान माना है। समुदायके अनेक अवयव वहाँ तो हुए गुण और समुदायरूप हुई एक वस्तु। इन दोनोमे अभेद माना गया है। जहाँ गुण पर्यायवान द्रव्य कहा है वहाँ भी

तो यही बात है। गुण पर्यायका जो समुदाय है सो ही द्रव्य है। यो ही प्रधानको माना। तीन गुणोका जो समुदाय है सो ही प्रधान है। तो एकानेक स्वरूपता तो आ ही गई। अनेकान्तवादमे यही तो होता है। तो अनेकान्तकी प्रक्रियामे सभी वादियो की सम्मति है। सबने ही वस्तुको एकानेकस्वरूप माना है।

नैयायिक सिद्धान्तमे अनेकान्त प्रक्रियाके आश्रयका यत्न—

और भी सुनो! नैयायिक सिद्धान्तमे द्रव्यत्व आदिकको सामान्य विशेष रूप स्वीकार किया है। क्यो हैं द्रव्यत्व आदिक सामान्य और विशेष स्वरूपकी वहाँ अनुवृत्ति और व्यावृत्ति स्वभाव पाया जाता है, याने अनेक पदार्थोंमे यह भी द्रव्य है। यह भी द्रव्य है, इस प्रकारका अनुवृत्त ज्ञान पाया जाता है। सबकी ही बुद्धिमे जो इस प्रकारका उस पदार्थमे विषय है इस कारण तो वह सामान्य स्वरूप हुआ और व्यावृत्त स्वभाव वाले हैं याने जो अन्यको प्रथक् करे, जैसे कभी द्रव्य नही है, द्रव्य कर्म नही है तो लो इसमे व्यावृत्त स्वभाव आ गया ना! तो यह विशेषरूप हो गया। यो पदार्थ सामान्य विशेषरूप है यह उनके सिद्धान्तसे ही जाहिर होता है। अनेकान्त प्रक्रियामे भी यही बात है—वस्तु एकानेकात्मक है, सद सदात्मक है, नित्यानित्यात्मक है, सामान्य विशेषात्मक है। जो अनेकान्तवादकी प्रक्रियायें हैं उनका ही अनुसरण सबको करना ही पडा है। देखिये जितने भी द्रव्य होंगे—जैसे आत्मा, मन, पृथ्वी, जल आदिक द्रव्य माने हैं, यह भी द्रव्य है, यह भी द्रव्य है सभी उन पदार्थोंमे द्रव्यपनेका ज्ञान अनुगत है। यही अनुवृत्त परिज्ञान है। यह भी द्रव्य है, यह भी द्रव्य है अर्थात् मानते हो कि द्रव्यत्व सामान्य स्वरूप है और जब द्रव्य, गुण कर्म ये सब पदार्थ सामने रखे है तो वहाँ व्यावृत्तिका ज्ञान होता है। द्रव्य गुण नही है। द्रव्य कर्म नही है आदिक व्यावृत्तिका ज्ञान होता है। तो ऐसी दो प्रकारकी पद्धतियोके विषय होनेसे देखो द्रव्यत्व आदिक सामान्य और विशेषरूप है। तो सिद्ध हुआ ना, कि यह द्रव्य सामान्य विशेषात्मक है। यो ही गुणोमे लगा लो। गुण भी अनेक होते हैं। उन अनेक गुणोमे यह भी गुण है यह तो हुआ अनुवृत्त बुद्धिका विषय याने सामान्य और गुण कर्म आदिकमें परस्पर कर्म गुण नही है। यह हुआ व्यावृत्ति बुद्धिका विषय। तब यह विशेषस्वरूप हुआ। तब देख लिया ना कि एक ही पदार्थमे सामान्य विशेषात्मकता इस सिद्धान्तने भी माना है। कर्ममें भी इसी तरह लगा लीजिए। जितने प्रकारके कर्म हैं—५ प्रकारके माने गए उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदिक इन सब कर्मोंमे यह कर्म है यो तो होता है अनुगत बुद्धिका विषय। सो सामान्यस्वरूप हुआ और गुण कर्म नही है, द्रव्य कर्म नहीं है यह हुआ प्रथक् करनेकी बुद्धिका विषय अर्थात् यह विशेष स्वरूप हुआ। तो यो सभी पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं, यों नैयायिक सिद्धान्तमे भी अनेकान्त प्रक्रिया मानी गई है।

सौगत सिद्धान्तमे अनेकान्त प्रक्रियाके आश्रयका यत्न—

अब सौगत सिद्धान्तकी बात सुनो ! वहा माना गया है कि एक मेचक ज्ञान चित्रज्ञान अनेकाकार है। जैसे पञ्चवर्ण स्वरूपरत्न मेचक होता है। जब ज्ञान किया तो वह एक प्रतिभासात्मक ही तो नही हुआ मगर एक प्रतिभास स्वरूप है। पञ्च वर्ण वाले मेचक रत्नका ज्ञान यदि एक प्रतिभासात्मक है तो भी चित्रज्ञान न रहा। यो तो हुआ यह अनेकाकाररूप और नील पीत आदिक नाना आकारोका जो ज्ञान है वह चित्रज्ञान है, एकाकार ही न रहा। यो तो चित्रज्ञान अनेकाकार स्वरूप है, फिर भी मेचकज्ञान अनेक नहीं हैं। तभी तो उसमे एक एक वचनका प्रतिबोध किया जाता है कि यह है मेचकज्ञान। तो वह मेचक ज्ञान, चित्र ज्ञान तो एक ही है। तब देखो ना, कि यह ज्ञान अनेकानेकस्वरूप हो गया। अनेक स्वरूप तो यो है कि उसमें प्रतिभास नाना हैं। और, वह मेचक ज्ञान एकस्वरूप यो है कि वह एक परिणमन है, एक ज्ञान है और इसी रूपमे अनुभव होता है कि यह मेचक ज्ञान है, ऐसा किसीको अनुभव नहीं होता कि यह सब मेचक ज्ञान हैं। एक ज्ञानमे एक ही ज्ञानकी बात कही जाती है। तात्पर्य यह है कि इस सुगत सिद्धान्तमे भी चित्रज्ञानको अनेकात्मक कहा गया है। तो अनेकान्तकी प्रक्रिया बिना कोई भी दार्शनिक अपना मन्तव्य सिद्ध नही कर सकता।

चार्वाकमन्तव्यमे अनेकान्त प्रक्रियाके आश्रयका यत्न—

और, भी देखिये ! चार्वाकने माना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार तत्त्व हैं और उन तत्त्वोंसे चेतन होता है। जैसे कि कोदो आदिकसे मद शक्ति प्रकट होती है। ऐसा चार्वाकके गुरु बृहस्पतिका सिद्धान्त है। उनके सूत्रमें कहा गया है। तो यहाँ यह विचार करें कि यह सही है या नही ? यह तो अन्य प्रकरणकी बात है। यहाँ प्रकरण केवल अनेकान्त प्रक्रियाका बताया जा रहा है तो यहाँ उस चैतन्यको पृथ्वी आदिक भूत चतुष्टय परिणाम माना। तो यहाँ देखो ! उसने एकानेकात्मक स्वीकार कर लिया ना ? वह चेतन एक है जो कि उन चारोसे उत्पन्न होता है और वह अनेक रूप है क्योकि पृथ्वी आदिक चारोसे अतिरिक्त अन्य एक कुछ नही माना गया है। कही वे ५ होते हैं कि ४ तो पृथ्वी आदिक और १ चेतन। अगर इस तरह मान लें तो चेतन एक दूसरा तत्त्व बन जायगा। फिर ४ भूत हैं इस तरहका सिद्धान्त न रहेगा। तो देखिये ! उस एकको उन्होंने अनेक स्वरूप माना। अब और भी विचार करिये ! चार्वाक सिद्धान्तमे पृथ्वी आदिक एक-एक पदार्थ चेतन नही हैं, क्योकि ऐसा माननेसे घट पट आदिक सभी पदार्थ चेतन बन जायेंगे। उनका सिद्धान्त यह है कि पृथ्वी आदिक अनेक स्वरूप यह एक चेतन है। यहाँ प्रक्रिया पर दृष्टि डालिए कि एक

अनेकात्मक विधिसे ही वे ऐसा बोल सके। अनेकान्तकी प्रक्रिया बिना न तो कोई किसी बातको सिद्ध कर सकेगा। वह मिथ्या हो या समीचीन हो यह तो एक निर्णय की बात है। मगर वचन व्यवहार सिद्धान्तकी स्थापना यह अनेकान्तकी प्रकिया बिना नहीं हो सकता। दार्शनिकताकी बात तो यह है ही लेकिन लोक व्यवहार भी बिना अनेकान्तवादकी प्रक्रियाका अनुसरण किए बन नहीं सकता। सब जीव ये नित्यानित्यात्मक हैं। तो हैं अथवा वे अब नहीं रहे ये दोनों बातें प्रत्येक मनुष्यमें लोग समझते है तभी व्यवहार चल रहा है। किसीको कुछ उधार दिया तो उसीसे क्यों मांगते हैं ? अटपट किसी अन्यसे क्यों नहीं मांगते ? इससे सिद्ध है कि नित्यपना है, जिसे दिया था वही है यह, तब उधार देने लेनेकी प्रक्रिया बनी और यदि पूर्णतया उस ही समयकी अवस्थावान हो तो भी नहीं बन सकता। परिणाम तो होता ही है। कालका परिणमन हुआ, अवस्थाभेद हुआ, दिन भी कुछ गुजरे। तब उसकी सूद भी कुछ बना। ये इन सभी बातोंसे अनित्यता भी जाहिर होती है। तो यों नित्यानित्यात्मक माना तब यह लोकव्यवहार बन सका। तो इस तरह अनेकान्तकी प्रक्रिया बिना कोई भी दार्शनिक न अपना सिद्धान्त स्थापित कर सकता और न कुछ लोक व्यवहार ही बन सकता।

मीमांसक सिद्धान्तमें अनेकान्त प्रक्रियाके आश्रयका यत्न—

❀

मीमांसक सिद्धान्तमें ज्ञानके सम्बन्धमें यह बताया गया है कि प्रमाता, प्रमिति एवं प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। प्रमाताका अर्थ है जानने वाला आत्मा। प्रमितिका अर्थ है जानन क्रिया। और प्रमेयका अर्थ है, ज्ञानके विषयभूत अनेक पदार्थ। तो जो ज्ञान नहीं होता है वह ज्ञान एक है और प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेयाकार ही है। इसका हेतु यह है कि अनुभव ही इस प्रकार होता है—मैं घटको जानता हूं। यहाँ मैं तो हुआ प्रमाता और घट हुआ प्रमेय और जानता हूं यह है प्रमिति। यहां अनुभव एक है और उस एक अनुभवमें सम्बन्ध है इन तीनका। याने ज्ञानकी जो मुद्रा बनी वह मुद्रा उस प्रमाता, प्रमिति और प्रमेयके विषयरूपसे बनी। ज्ञान कोई ऐसा नहीं कि जो केवल एक प्रमाताके ही आकार हो—अहं। इससे ज्ञान किया और यदि ज्ञान होता है तो मैं अपनेको जान रहा हूं तो वहाँ तीन बातें आ ही गई। मैं हूं प्रमाता, अपनेको हुआ प्रमेय और जानता हूं यह है प्रमाण। तो ज्ञानकी जो मुद्रा बनती है वह बनती है प्रमाता, प्रमेय, प्रमितिके आकाररूपसे। दूसरा हेतु यह है कि ज्ञान जितने होते हैं वे सब स्वतः प्रकाशक होते हैं। तो जब स्वतः प्रकाशक हुए तो आकार ज्ञानका इन तीनरूप होगा ही। ये भिन्न नहीं है, परसे ज्ञान आये ऐसी बात नहीं है। इसलिए यहाँ विषयभूत परपदार्थके आकारकी बात नहीं कह रहे, किन्तु ज्ञानमें विषयपनेसे आये हुए प्रमेयकी बात कही जा रही है और वह प्रकाशन

स्वत' हुआ है और यह स्व है प्रमाता और ज्ञानमें जानन क्रिया तो है ही। तो यों जो ज्ञान होता है वह प्रमाण प्रमिति और प्रमेयाकार होता है। ऐसा मीमांसक सिद्धान्तमें कहा गया है। अब उक्त मीमांसक सिद्धान्तमें यह परखना है कि अनेकान्त की प्रक्रिया किस तरह अपनाई गई है। यहाँ यह स्वीकार किया है कि प्रमाता प्रमिति और प्रमेयरूप अनेक पदार्थ उनके विषयपनेसे सहित एक ज्ञान है। ज्ञान एक है जिसमें विषय ये तीन हुए। ऐसा ज्ञान स्वीकार किया है तो यहां विषयपनेकी अपेक्षासे तो बात आयी तीन और ज्ञानस्वरूपकी अपेक्षासे वह है एक ही। विषयपनेका ज्ञान स्वरूपता होनेसे उन तीनके विषयात्मक ही यह एक ज्ञान स्वीकार किया है। तात्पर्य तो यही हुआ कि यह एक ज्ञान त्रितयात्मक है, एकानेकान्तात्मक है, यही तो अनेकान्त की प्रक्रिया है।

अनेकान्त प्रक्रियामें वस्तुपरिचयकी समीचीनता—

❀

अब उक्त सब बातोंमें सप्त भङ्गी बनाई जा सकती है। ज्ञान स्यात एक है, ज्ञान स्यात अनेक है। ज्ञान स्यात एक और अनेक है, ज्ञान स्यात अवक्तव्य है, ज्ञान स्यात एक अवक्तव्य है। ज्ञान स्यात अनेक अवक्तव्य है, ज्ञान स्यात एक अनेक अवक्तव्य है। इसी प्रकार इन ऊपर बताये गए सभी दार्शनिकोंके सिद्धान्तमें एक अनेक सामान्य विशेष सभी अनेकान्त प्रक्रियावोंमें सप्तभङ्गी लगायी जा सकती है। जैसे कि नैयायिक जन द्रव्य गुण कर्म आदिक पदार्थ मानते हैं तो वहाँ सामान्य विशेष घटित हो ही जाता है। द्रव्य द्रव्य इस प्रकार अनुवृत्तिका ज्ञान होनेसे सामान्य आया और द्रव्य गुण नहीं, कर्म नहीं, ऐसी व्यावृत्तिका बोध होनेसे सामान्य आया। अब उस ही एकको जैसे द्रव्य ही लिया तो यह स्यात सामान्य रूप है। यह स्यात विशेषरूप है, यह स्यात सामान्य विशेषरूप है, यह स्यात अवक्तव्य है, यह स्यात सामान्य अवक्तव्य है यह स्यात विशेष अवक्तव्य है, यह स्यात् सामान्य विशेष अवक्तव्य है। तो यों सभी दार्शनिकोंने अपने सिद्धान्त निर्माणमें अनेकान्त प्रक्रियाको अपनाया है और वास्तविकता भी यही है कि प्रक्रियावोंको अपनाये बिना न तो कोई दर्शन बन सकता, न लोकव्यवहार हो सकता। बल्कि यह भी कह सकते हैं कि अनेकान्त प्रक्रियाके अपनाये बिना कोई बोल भी नहीं सकता।

अनेकान्तप्रक्रियाके बिना बोधगतिका अभाव—

❀

देखिये ! किसीने कुछ कहा तो जो कहा सो है, जो नहीं कहा गया सो नहीं है। कोई कहता है कि मैं सत्य ही बोलता हू तो उसके साथ साथ यह तो लगा ही हुआ है कि मैं असत्य नहीं बोलता हू। दोनो बातें माननेसे ही अभिप्राय बनेगा। भले

। उनमेसे बात एक ही कही जाय। लेकिन दूसरी बात उसके साथ लगी हुई ही है। किसी भी चीजके सम्बन्धमे कोई यह कहे कि यह है तो उसके साथ यह दूसरा भङ्ग लगा ही हुआ है कि यह अन्य कुछ नही है—यह ही है, यह अन्य कुछ नहीं है। और फिर ये दो बातें एक साथ नही कही जा सकती। इस कारण अवक्तव्य है। ये तीन स्वतन्त्र भङ्ग तो स्पष्ट हीं आ गए। फिर इनका सयोगी भङ्ग बनकर ७ भङ्ग हो जाते हैं। तो सप्तभङ्गी अनेकान्त प्रक्रिया यह प्राकृतिक चीज है और यह मानना ही होगा। अब केवल खेदकी बात इतनी ही है कि प्रयोगमे तो सब अनेकान्त प्रक्रियाओं को लेना है, पर अनेकान्तकी पद्धतिको समीचीनताका रूप देनेमें सकोच करते हैं। क्योकि उससे अनेकान्त प्रक्रियाको स्पष्ट रूपसे प्रसिद्ध कर लेंगे दार्शनिक तो दर्शनके प्रसगमे एक भी विवाद नही रह सकता। इस प्रक्रियाके मानते ही धीरे धीरे सर्वत्र सुधार होकर वास्तविकतापर उपयोग पहुच जायगा। द्रव्यके सम्बन्धमे जैसे सब लोग समझ रहे हैं कि यह पदार्थ है तो वह पदार्थ शक्तिमय है और किसी न किसी अवस्थामे है। और, ऐसे ऐसे अनेक पदार्थोंके साथ समता है फिर भी सत्त्व और परिणमनकी दृष्टिसे एककी अनेकसे भिन्नता है। लेकिन इस विशेषताके वर्णनमे द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विशेष ये ५ बातें आ जाती हैं। अब ये ५ बातें अलग अलग हैं कहाँ ? प्रदेश तो वहीं वही हैं इन ५ के लिए किसी भी द्रव्यमे जो अवस्था बनती है वह उसके प्रदेशमें ही है। जो गुण है वह उसके प्रदेशमे ही है। अब उनकी तुलना करनेसे समता विषमताका जो ज्ञान हुआ वह कही अन्यत्र नही पडा है। जिन धर्मोको निरख कर हम समता विषमताको मानते हैं वह तत्त्व उन ही प्रदेशोमे है। तो जब ये ५ बातें एक ही जगह हैं तो समवाय फिर क्या रहा ? कथचित् तादात्म्य ही तो समवाय है और अभाव किसीके भावरूप ही होता है, तब ये ६ पदार्थ ७ पदार्थ कहाँ रहे ? और इस धुनमे जिसे पदार्थ कहना चाहिए था वे सब छूट गए। तो अनेकान्त प्रक्रिया अपनानेपर धीरे धीरे सभीका सुधार होकर वस्तुकी वास्तविकतापर उपयोग पहुच ही जायेगा।

वस्तुके सत्य परिज्ञानके लिये स्याद्वादके आश्रयकी आवश्यकता—

❀

वस्तुका सत्य परिज्ञान करनेके लिए स्याद्वादका आश्रय करना परम आवश्यक है। स्याद्वादका आश्रय किए बिना वस्तुके सम्बन्धमे यथार्थ परिज्ञान नही हो सकता है। वस्तु तत्त्वके यथार्थ परिज्ञान बिना मोह नही हट सकता। मोहके हटे बिना राग-द्वेष दूर नही हो सकते। रागद्वेष दूर हुए बिना ससारके जन्म मरण सकट मिट नहीं सकते। जन्म मरणका सकट मिटे, इस ही मे आत्माका श्रेय है और यही सर्वोपरि वैभव है। तो ऐसी मुक्ति परम वैभवको पानेके लिए इन तत्त्वोका परिज्ञान करना आवश्यक है और उनके यथार्थ परिचयका आधार है स्याद्वाद। इसी हेतु इस स्याद्वाद

का निरूपण करने वाली सप्त भङ्गी तरङ्गिणीका निर्माण हुआ है, यह सप्तभङ्गी तरङ्गिणी अनेक भङ्गोमे व्याप्त है और सिद्धान्तरूपी समुद्रसे सयुक्त है। मानो जैसे कोई एक समुद्र होता है और उस समुद्रमे लहरें अनेक होती हैं, ऐसे ही समझिये कि यह सिद्धान्त समुद्र है। सिद्धान्त कहते हैं वस्तु तत्त्वका वर्णन करने वाला शब्द और ज्ञानरूप आगमको। उस सिद्धान्त समुद्रमें अनेक लहरें उठ रही हैं स्याद्वादके प्रतापसे। तो जैसे जैसे कोई संतप्त मनुष्य समुद्रकी लहरोंका सेवन करके अपने संतापको समाप्त करके आनन्द प्राप्त करता है इसी प्रकार इस सिद्धान्त समुद्रकी अनेक लहरोंका स्पर्श करके विद्वान पुरुष भी अज्ञान संतापको हटाकर, मोह संतापको दूर करके विशुद्ध सत्य आनन्द प्राप्त करते हैं। सो ग्रन्थकार यह भावना कर रहे कि अनेक भङ्गोंसे व्याप्त सिद्धान्त समुद्रसे संयुक्त यह सप्तभङ्गी तरङ्गिणी विद्वानोंको आनन्द प्रदान करे।